UNIVERSAL LIBRARY
OU_186329
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 891.09 T97 Accession No. H6188

Author

Title रामावतार त्यागी

This book should be returned on or before the date last marked below.

आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि

रामावतार त्यागी

राजपाल एण्ड सन्ज़

"मेरी हस्ती को तोल रहे हो तुम,
है कौन तराजू जिस पर तोलोगे ?
मैं दर्द-भरे गीतों का गायक हूँ,
मेरी बोली कितने में बोलोगे ?"

त्यागी की ये पंक्तियाँ हालाँकि मेरे लिए चुनौती हैं, फिर भी मैं उसकी हस्ती को तौलने और उसके दर्द-भरे गीतों की बोली बोलने की हिम्मत कर रहा हूँ। इसका कारण साफ है कि त्यागी से आँख मिलाये बग़ैर आधुनिक गीत-काव्य से परिचय प्राप्त करना सम्भव नहीं है। वह स्वभाव से अक्खड़, आदतों से आवारा, तबीयत से ज़िद्दी और आचरण से बेहद तुनुक-मिज़ाज है। अगर यों कहूं तो आप इसे और भी अच्छी तरह समझ सकेंगे कि यह वह खुद भी नहीं जानता कि वह क्या है ! उसके बहुत-से साथी उसके व्यक्तित्त्व को असंगतियों और विरोधाभासों का 'एलबम' कहते हैं, तो मैं भी उनके स्वर-में-स्वर मिलाकर इतना कहने की स्वतन्त्रता और चाहूंगा कि केवल उसका व्यक्तित्त्व ही नहीं, पूरा जीवन ही असंगतियों से रंगा हुआ है; और शायद उसकी कविता में भी उसके स्वभाव की ये असगतियां स्पष्ट रूप से उतरी हैं।

त्यागी के व्यक्तित्त्व की असंगतियों को और भी साफ़ तौर से आपके सामने रखने के लिए मैं एक घटना का उल्लेख करना चाहूंगा। 1957 की एक शाम। दरियागंज के 'रंगमहल होटल' का अस्त-व्यस्त कमरा।

सिगरेट का धुआँ और उनके पिये-अधपिये बे-शुमार टुकड़े ! इधर-उधर बे-तरतीब फैलीं किताबें और पत्र-पत्रिकाएं। कमरे में उस समय मैं और वह दो ही प्राणी हैं। इन दिनों वह अपनी बदनाम किताब 'चरित्रहीन के पत्र' लिख रहा है। उसमे से एक पत्र वह मुझे पढ़कर सुनाता है। पत्र नहीं है वह, असल में एक निहायत तल्ख़-सी चीज़ है कुछ; जिसमें उसके अनुभवों की पूरी कड़वाहट उतर आई है। वह एक प्रणय-पत्र है, जो है तो कल्पित, किन्तु लिखा गया है एक ऐसी औरत के नाम, जो कल्पित नहीं है। उस पत्र में जितना सोज़ है, उससे कहीं ज्यादा कड़वाहट छिपी है; जितनी मुहब्बत है, उससे कहीं अधिक नफ़रत। उसके आख़िर में एक ऐसी पंक्ति आती है कि जिसका भाव यह है—"मुझे घृणा हो गई है सारे नारीत्व से, सम्पूर्ण नारी-जाति से।" जिस समय पत्र के इस वाक्य को उसने पढ़ा उसके होंठ घृणा से सिकुड़ गए। और तभी मैने देखा कि अचानक उसकी आंख से आंसू का एक गरम कतरा निकलकर उस पत्र पर जा गिरा और तभी उसने सहसा दोनों हाथों से अपना मुंह ढांप लिया।

यह है त्यागी का सही चित्र। इसके अतिरिक्त जो कुछ वह अपने को समझता है, या और लोग उसे समझते हैं, वह झूठ है या प्रचार है। वैसे ये दोनों शब्द पर्यायवाची है। जब वह यह कहता है कि मैं हर औरत से नफ़रत करता हूं, तब उसका अर्थ यह होता है कि वह किसी एक औरत से बेइन्तहा मुहब्बत करता है। जब वह दोस्ती के नाम पर नफ़रत से थूक रहा होता है, तभी वह किसी दोस्त के लिए अपनी पूरी ज़िन्दगी कुरबान कर देने की योजना बना रहा होता है। सारे दिन हर आस्तिक मूल्य की पूरी वंश-परम्परा को कोस लेने के बाद भी शाम को उसका मस्तक किसी मन्दिर की देहरी पर झुका होता है।

बात ज़रा अजीब-सी है, किन्तु है बेहद साफ। क्या कभी आपने किसी हद दरजे के ग़मगीन आदमी की शक्ल ग़ौर से देखी है? यदि नही देखी तो त्यागी के चेहरे को देखिए। उसके चेहरे पर कुछ ऐसी आड़ी-तिरछी

रेखाएं आपको दिखाई देंगी, जिनका प्रभाव आप पर सौम्य नहीं पड़ेगा। उसकी आंखों के गिर्द फैली रेखाएं आपको पसन्द नहीं आएंगी। उसके होंठों की नीली शिकनें आपको बदनुमा मालूम होंगी। लेकिन जब कभी परेशानी के वक्त वह आहिस्ता से आपके कन्धे पर हाथ रखकर कहेगा—"मैं जानता हूं आपको क्या चाहिए? मेरे पास एक ही है, पर आपकी ज़रूरत मुझसे ज्यादा है, इसलिए आप इसे ले लें।" तो उसके चेहरे की वह बद-सूरती किसी जादुई प्रभाव से अचानक गायब हो जायगी और वह आपको संसार का सबसे सुन्दर इन्सान दिखाई देने लगेगा।

त्यागी की ज़िन्दगी उसके जीवन में समाए हुए दर्द ने बिगाड़ दी है। ऐसी अवस्था में अगर वह सौन्दर्य-चेताओं, नाजुक-मिज़ाजों को कहीं खटकती है, बदसूरत लगती है, तो वह दुरुस्त है, उचित है। मुझे उसके पक्ष में कुछ नहीं कहना है। मुझे तो आपसे उस अंधियारे के सम्बन्ध में कुछ बातें कहनी हैं, जो हर सूरज का जनक है, पिता है। मुझे तो उस कीचड़ के सम्बन्ध में कुछ कहना है, जो कमल का स्रष्टा है। यदि त्यागी का जीवन समतल और बेदाग़ होता तो मुझे सन्देह है कि वह सौन्दर्य को इतने निकट से प्यार कर पाता। मंझधार में से होकर आने वाली लहर किनारे का हाथ ज़रा मज़बूती से थामती है। यह सही है कि पगडंडी पर चलने वालों के चेहरों पर जरा ग़र्द ज़्यादा जमती है, लेकिन वे राजपथ पर चलने वालों से पहले ही मंज़िल पर पहुंच जाते हैं।

पिछली पंक्तियों में मैंने यह ठीक ही लिखा है कि त्यागी बड़ा अक्खड़ है। जी हां, यदि वह अक्खड़ न होता तो अक्सर लोग, यहां तक कि उसके बहुत नज़दीकी दोस्त भी उससे असन्तुष्ट क्यों रहते? मैं स्वयं भी उनमें से हू, जो त्यागी के इसी स्वभाव के कारण काफ़ी दिन तक उससे बेहद नाराज़ रहा था। एक समय था जबकि दिल्ली की गलियों में त्यागी के अक्खड़पन की बड़ी चर्चा रहती थी। शायद ही कोई ऐसा सौभाग्यशाली दिन बीतता होगा जिस दिन उसका कोई-न-कोई कारनामा सुनाई न दिया हो। ऐसे अवसर तो उसके जीवन में अनेक बार आए हैं, जब मित्र-मण्डली

में बातें करते हुए उसका हाथ अपनी पेण्ट की जेब में न रहकर दूसरे के गरेबान पर पहुंच जाता था। मुझे यह अच्छी तरह याद है कि उसकी इन बेतुकी और ग़ैर-शायराना आदतों को देखकर एक दिन उर्दू के किसी शायर ने कहा था—"त्यागी में मण्टो जैसी ख़राबियां पाई जाती हैं।" पर मैं यहां यह लिखने की आज़ादी चाहता हूं कि मण्टो और त्यागी में एक बड़ा फ़र्क है। मन्टो लोगों को अपनी ओर रुजू करने के लिए यह सब करता था, पर त्यागी ऐसा करता है अपने और उन लोगों के बीच खाई बनाने के लिए —जिन्हें वह पसन्द नहीं करता। त्यागी ने जीवन में समझौता करना कभी पसन्द नहीं किया। इसीलिए वह ज़िन्दगी के हर मैदान में (कविता को छोड़कर) बे-तरह नाकामयाब रहा है। उसे केवल एक ही क्षेत्र में कामयाबी मिली है—बदनामी कमाने और लड़ाई मोल लेने में। और उसे अपनी इस नाकामयाबी, इस बदनामी पर बड़ा अभिमान है। उसका कहना है कि यह मैंने बड़ी मेहनत से कमाई है। गांव में पैदा होने के कारण शहरी ज़िन्दगी की नफ़ासत को वह अपने में पूरी तरह उतार न सका, अपने को उसके अनुकूल ढाल न सका। आज भी वह बिना सोचे-समझे सादगी से ईमानदारी की बात कर जाता है, तो यह है रामावतार त्यागी का ऊपरी चित्र और चरित्र, जिसने ज़िन्दगी में अनेक कठिनाइयों का भीषण हलाहल पीकर अपनी कविताओं द्वारा मुहब्बत की शराब बड़ी उदारता से बांटी है।

त्यागी का जन्म 8 जुलाई, 1925 को मुरादाबाद (उत्तर प्रदेश) की तहसील सम्भल के 'कुरकावली' नामक गांव में एक त्यागी ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। पुरानी वंश-परम्परा के अनुसार उसका परिवार अच्छा-खासा ज़मींदार घराना था, जो निरन्तर मुकद्दमेबाज़ी में लगा रहने के कारण धीरे-धीरे मामूली किसान-परिवार में बदल गया। घर की आर्थिक दशा अच्छी न होने के कारण वह सदा अभावों और संघर्षों से ही जूझता रहा। परिवार में चार भाई और एक बहन। उनमें सबसे बड़ा रामावतार। यद्यपि परिवार की अवस्था उन दिनों कुछ अच्छी नहीं थी, किन्तु उसके

रीति-रिवाज-व्यवहार सब-के-सब ज़मींदारों-जैसे ही थे। इसी कारण उसे छोटी जाति के बच्चों के साथ खेलने तक की मनाही थी। लेकिन घरेलू परम्पराओं के प्रति मन में शुरू से ही विद्रोह होने के कारण वह खेलता था उन्हीं के साथ। परिणामस्वरूप खूब पिटाई होती थी। त्यागी का मन पढ़ने की ओर इसलिए घूमा कि उसे पढ़ने से रोका गया, वैसे शिक्षा के प्रति कोई विशेष मोह उसके मन में नहीं था। स्वांग, गाने, भजन, रामायण और आल्हा आदि में उसका मन शुरू से ही रमता था। लाख बार रोके-टोके जाने के बावजूद अपने परिवार के विरोधी परिवारों में वह नित्य आता-जाता था। त्यागी को अपनी दादी का प्यार और दुलार बहुत अधिक मिला। हर वक्त होने वाली पिटाई से उसकी रक्षा वे ही करती थीं। स्थिति यह थी कि शत्रुओं के परिवार त्यागी को उसके अपने परिवार से अधिक प्यार करते थे। आख़िर रोज़-रोज़ की मार-पीट और विद्रोह का परिणाम यह हुआ कि परिवारों की शत्रुता मित्रता में बदल गई। वह अभी दस ही वर्ष का था कि उसे पढ़ने के लिए शहर भेज दिया गया। स्कूल गाव से 5 मील दूर; और पैदल ही रोज़ वहां आना-जाना। कभी मौज़ आई तो रास्ते में ही बैठकर कहीं तुकें जोड़ने लग जाता था। इस तरह कविता किसी-न-किसी रूप में बचपन से ही उसके साथ थी।

इस दौरान सन् 194। में, जब वह सातवीं कक्षा में ही था, उसका विवाह भी कर दिया गया था। जिस परिवार में उसका विवाह हुआ, वह भी पढ़ने का घोर विरोधी था। पत्नी अपढ़ होने के साथ-साथ बदजुबान थी। जीवन में यदि थोड़ा-बहुत आगे बढ़ने का सम्बल किसी ने दिया तो वह थी उसकी मां। दादी के अतिरिक्त मां से ही उसे आन्तरिक ममता मिली। परिवार में केवल दो ही व्यक्ति ऐसे थे, जिन पर घर के बड़ों की कोप-दृष्टि रहती थी, एक उसकी मां और दूसरा वह स्वयं। मां की पीड़ा का त्यागी के मन पर बड़ा असर पड़ा; और यही एक बात थी जिसने उसे शिक्षा की प्रेरणा भी दी। उसने मन-ही-मन यह निश्चय कर लिया था

कि मां को सुखी करने के लिए उसका पढ़ना ज़रूरी है।

सन् 1944 में सम्भल के किंग-जार्ज यूनियन हाई स्कूल से मैट्रिक की परीक्षा देने के बाद उसने जब कालिज़ में पढ़ने की इच्छा की तो घर-भर ने इन्कार कर दिया। दूर-दूर से नाते-रिश्तेदारों को बुलाकर सिफारिशें कराई गई, किन्तु सब बेकार। एक तो उन दिनों निरन्तर मुकद्दमेबाज़ी में फंसे रहने के कारण घर की आर्थिक दशा अच्छी नहीं थी, दूसरे पिता उसे आगे पढ़ाने के पक्ष में नहीं थे। लेकिन जन्म के विद्रोही को रोक भी कौन सकता था? दूर के रिश्ते के एक ताऊ से सौ रुपये उधार लिए और सिर पर सामान लादकर वह कालिज़ में दाख़िला लेने के लिए चन्दौसी पहुंच गया। चन्दौसी के श्यामसुन्दर मैमोरियल कालिज के एक लोकप्रिय छात्र के रूप में उसने सन् 1948 में बी०ए० किया। इसी बीच पत्नी के परिवार वालों से उसका गहरा मनमुटाव हो गया। वह इस सीमा तक पहुंचा कि उन्होंने उसका बहुत अपमान किया। बात यहां तक बढ़ी कि पत्नी नाता तोड़कर अपने मैके चली गई। यहीं से त्यागी के जीवन का मोड़ आता है। वह नौकरी करने की नीयत से दादी से कुछ रुपये लेकर चुपचाप बे-सरो-सामान दिल्ली के लिए चल दिया। पर रास्ते में ही उसकी तबीयत बेईमान हो गई और मन-ही-मन पढ़ाई जारी रखने का निश्चय भी हो गया।

दिल्ली एक अज़नबी जगह, और एक मामूली-सी सन्दूकची उसके पास। उसमें पांच रुपये और कुछ आने। कई दिन तक दिल्ली-जंकशन के मुसाफ़िरख़ाने में ही आवारगी। दिल्ली में रहने वाले एक दूर के रिश्तेदार से उसने कभी श्री वियोगी हरि का नाम सुना था। उनसे मिलने का मन-ही-मन निश्चय करके वह उनका पता निकालता-निकालता वहां पहुंच गया। हरिजी ने उसकी दुःख-गाथा सुनी और 'हरिजन उद्योगशाला' में उसे ठहरने का स्थान मिल गया। शर्त थी कि हरिजन बच्चों को उसे कुछ समय पढ़ाना होगा। त्यागी का स्वप्न धीरे-धीरे साकार होने लगा था।

एव दिन वह समय निकालकर एम० ए० (हिन्दी) की कक्षा में प्रवेश पाने की इच्छा से हिन्दू कालिज में जा पहुँचा। उन दिनों वहाँ हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष डॉक्टर सुरेन्द्रनाथ शास्त्री थे। इस समय तक त्यागी की कुछ कविताएँ स्थानीय 'वीर अर्जुन' में प्रकाशित हो चुकी थीं, अतः जब त्यागी ने श्री शास्त्री से उनके कालिज में प्रवेश पाने की इच्छा व्यक्त की और अपना नाम बताया तो उन्होंने नाम सुनकर उसे प्यार से अपने पास बिठाया। लेकिन त्यागी का सीधा सवाल था, "दाख़िले के पैसे भी पास नहीं हैं, और पढ़ने की हार्दिक-इच्छा है, कहीं से कर्ज़ की व्यवस्था हो जाय तो भी काम पूरा हो सकता है।"

अब वह उस दिल्ली-विश्वविद्यालय का छात्र था, जहां फ़ैशन का कोई ठिकाना नहीं। उसके पास पहनने और फ़ैशन करने के लिए उन दिनों केवल हरी कमीज़ और सफेद लट्ठे का एक पाज़ामा ही था। लेकिन थोड़े ही दिनों में अपनी कविता और अध्ययन में रुचि होने के कारण वह अपने साथियों और गुरुजनों की निगाह में जम गया।

सन् 1950 में उसकी भेंट एक दिन श्री महावीर अधिकारी से हुई। उन दिनों अधिकारीजी 'नवभारत' के रविवासरीय संस्करण का सम्पादन करते थे और 'नवयुग' पर सहायक सम्पादक के रूप में उनका नाम प्रकाशित होता था। अधिकारीजी ने त्यागी की साहित्यिक प्रतिभा को परखा और इस जगमगाते हीरे को हिन्दी-साहित्य-जगत के सामने लाकर अपने जीवन के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य का सम्पादन किया। 'सिकन्दर' नामक खण्डकाव्य के कुछ अश भी उन दिनों 'नवयुग' में प्रकाशित हुए थे, जिन्हें पढ़कर हिन्दी-कविता के पारखियों को इस नये नक्षत्र के उदय का आभास हो गया था। धीरे-धीरे त्यागी की प्रतिभा तथा योग्यता से दिल्ली का साहित्यिक वातावरण महक उठा। यहीं से उसके विद्रोह और दर्दभरे गीतों की दास्तान शुरू होती है।

मैंने उसे किस प्रकार जाना, इसकी भी एक रोचक कहानी है। सन् 1950 का 16 अगस्त। सब्ज़ीमंडी की रामरूप धर्मशाला में स्वतन्त्रता-

दिवस के उपलक्ष्य में कवि-सम्मेलन का आयोजन। सम्मेलन की अध्यक्षता मैं कर रहा हूं। कार्यवाही प्रारम्भ करते हुए एक तरुण का नाम मैं सूची में से घोषित करता हूं। कवि है रामावतार त्यागी। देखता हूं कि औसत कद का सांवले रंग का एक तरुण काला चश्मा लगाये मंच की ओर आ रहा है। इससे पूर्व मैंने उसे नहीं सुना था। लेकिन उस दिन मैंने जो कुछ सुना, वह आज भी नहीं भूला है :

पुरातन व्यवस्था बदलती, नया युग
नया खून लेकर चला आ रहा है।
नई नाव जर्जर पुराने पुलिन पर,
मिलन को उतरना नहीं चाहती है।
नई वायु सूखे हुए उपवनों में,
ठहरकर गुज़रना नहीं चाहती है।

यह था विद्रोह और क्रांति का संदेश, जो उस दिन स्वतन्त्रता के शुभागमन पर मुझे त्यागी से सुनने को मिला था। मैंने तभी जान लिया था कि त्यागी का कवि समाज के नव निर्माण के लिए अत्यन्त आतुर और आकुल है। वह चाहता है समाज में विषमता का जो जाल फैला हुआ है, उसका शीघ्र ही अन्त हो और देश का नव निर्माण करने के लिए तरुणों में त्याग और बलिदान की पावन गंगा प्रवाहित हो उठे।

त्यागी के काव्य में अपने पारिवारिक जनों से निरन्तर मिलने वाली प्रताड़नाएं और लांछनाएं समय की हवा पाकर असन्तोष और विद्रोह के रूप में बदल गईं। धीरे-धीरे उसका वही असन्तोष परिवार के प्रति न रह कर समाज की विषमताओं के प्रति हो गया और एक स्थिति ऐसी आई कि उसकी रचनाओं में समाज की समग्र व्यवस्था के प्रति असंतोष दिखाई देने लगा। उसे जीवन के प्रारम्भ से ही किसी का प्यार और दुलार नहीं मिला था। शायद इसीलिए समाज के प्रत्येक प्राणी में उसे शोषक और हिंसक का रूप दिखाई देने लगा। यहां तक कि समाज की व्यवस्था में आमूल-

चूल परिवर्तन करने के लिए उसका कवि व्यग्र हो उठा। उसने युग के इतिहास को बदलने के लिए देश के तरुणों को चुनौती दी और लिखा :

तुम समझोगे, मैं बागी हूं, विद्रोही हूं,
तुम कहकर मुझको 'पागल' एक पुकारोगे।
तुम 'महा नास्तिक' कहकर गाली भी दोगे,
हो सका अगर तो मुझ पर पत्थर मारोगे।
पर मैं तो बन्धन तोड़ ज़माने-भर के ही,
इस एक बग़ावत को सुलगाने आया हूं।
मैं चमचम करते फाड़ समाजी परदे को,
अन्दर सड़ती तसवीर दिखाने आया हूं।

तथा

सौगन्ध हिमालय की तुमको,
युग का इतिहास बदल दो !
ये भूखे कंगाल सिकुड़ते सड़कों पर रातों में,
दिया गया नूतन विधान का ध्वज जिनके हाथों में,
इससे तो पतझर अच्छा,
ऐसा मधुमास बदल दो !
सौगन्ध हिमालय की तुमको
युग का इतिहास बदल दो !

निरन्तर अभावों और संघर्षों से जूझते रहने के कारण कवि त्यागी का यह विद्रोही रूप अपने छात्र-जीवन में ही पनप चुका था। सन् 1950 में दिल्ली विश्व-विद्यालय से हिन्दी में एम० ए० करने से पूर्व ही दिल्ली के साहित्यिक तथा सामाजिक जीवन में उसका अच्छा स्थान बन चुका था। कुछ समय बेकार रहने के बाद उसे यहां की 'रामरूप विद्या मन्दिर' नामक शिक्षण-संस्था में अध्यापन-कार्य मिल गया और उसके जीवन में कुछ स्थायित्त्व भी आ गया। इसी दौरान उसने परिवार के प्रति अपने उत्तरदायित्त्व को यहां तक निबाहा कि यह संघर्ष करते हुए भी अपने दो छोटे

भाइयों को पढ़ाने में भरपूर मदद की। लेकिन स्वाभिमानी और लड़ाकू स्वभाव होने के कारण वह रामरूप विद्यामंदिर में अधिक दिन नहीं टिक सका और फिर उसके जीवन में एक नई आँधी आ गई।

यहीं से उसकी अनगिन असफल प्रेम कथाओं का आरम्भ होता है। पत्नी से सदा-सर्वदा के लिए रिश्ता टूट चुका था। ख्याति उसके चारों ओर घूमने लगी थी। फिर क्या था, रूप की तितलियां आती रहीं और एक के बाद एक, कभी अनेक भी उसके जीवन को डसकर जाती रहीं। उसका जीवन पूरी तरह विषाक्त हो उठा। कभी मूर्च्छित और कभी अर्ध-मूर्च्छित मैंने उन दिनों उसे देखा। जब-जब ग़ौर से देखा, दर्द के सिवा उसके पास कुछ नहीं दिखाई दिया।

अब उसकी कविता में विद्रोह की आग नहीं थी। केवल प्रेम और शृंगार के अनूठे गीतों की रचना ही इस बीच हुई। यह बात ज़रूर है कि उसकी ऐसी रचनाओं में भी सौंदर्य और प्रेम की विषमता के प्रति विद्रोह परिलक्षित होता है। इस दौर की उसकी रचनाओं की गन्ध दिल्ली की गली-गली में बिखरकर सारे हिन्दुस्तान में फैल गई।

'ज़िन्दगी' नामक कविता ने तो उन दिनों देश की तरुणाई के मानस में अचेतन रूप से सुप्त वियोग के ज्वार को बुरी तरह जागृत कर दिया था। त्यागी के साथ-साथ बेशुमार कण्ठ गुनगुना उठे :

आंख दो टकरा गई हों, जब किसी के लोचनों से
हो गया हो मुग्ध जो भी रूप के कुछ कम्पनों से,
मौन जीवन-वाटिका में प्यार के तरुवर तले,
मिल गए हों प्राण जिसको राह में आते वनों से
उन मिलन के दो क्षणों का नाम केवल ज़िन्दगी,
रात की इन तड़पनों का नाम केवल ज़िन्दगी।

बन्धनों से चाहता है मुक्त होना सब ज़माना
चाहता हूं मैं किसी के लोचनों में घर बसाना

बंध गया जो दो भुजों के बन्धनों में एक पल भी
चाहता है मौन कारावास में जीवन बिताना।
प्यार के इन बंधनों का नाम केवल ज़िन्दगी
रात के इन तड़पनों का नाम केवल ज़िन्दगी।

×

मुझको भी प्यार मिला दो दिन
कोमल भुज-हार मिला दो दिन
उन आँखों में रहने का भी
मुझको अधिकार मिला दो दिन
जिन आंखों की गहराई में, तुम डूब रहे, मैं उबर चुका,
पथ एक वही अन्तर इतना, तुम गुज़र रहे, मैं गुज़र चुका।
विश्वास किया सौगन्धों पर
मैंने उस दिन तुमसे बढ़कर
कल मुझे लिखा जो आज तुम्हें
मज़मून वही, तिथि का अन्तर।

त्यागी ने अपने थोड़े-से जीवन में स्वप्न की भूमि पर कल्पना के अनेक महल बनाए और मिटाए हैं और उसने उनमें आकण्ठ डूबकर 'सृजन' और 'पतन' की गहराई को करीब से देखा है। इसकी घोषणा उसने खुद यों की है :

मैं चला हूं जहां भी मरुस्थल वहीं, घोर संवेदनों को चला झूमता,
जीवनाकाश में चन्द दुर्दैव का, रात में और दिन में रहा घूमता।
प्यार मुझको सुलाता रहा दर्द की लोरियां ज़िन्दगी में सुनाकर सदा,
दोपहर दुर्दिनों का निराशा लिये पैर मेरे जलाकर रहा चूमता।
परिच्छेद मैंने बहुत ज़िन्दगी के लिखे, पर सभी की कथा एक-सी
दीप पहले जला औ शलभ बाद में राख दोनों हुए, थी खता एक-सी
दर्द की एक मदिरा दवाई किसी ने बताई इसी से बहुत पी गया,
पी गया हूं गरल, पी गया अश्रु भी, पी गया हूं सुधा, पर व्यथा एक-सी।

ज़िन्दगी से मरा, मौत से जी गया, आंधियों में पला,
सांस से बुझ गया, मैं जनम को मरण को बहुत जानता हूं।

त्यागी सरल था, सहज था, इसलिए छला भी उसे जी भरकर गया। लालची निगाहें आती रहीं और उसके स्वप्न तोड़कर जाती रहीं। कलियों ने, फूलों ने, भंवरों ने, यहां तक कि मालियों ने भी उसे नोचा। उसके जीवन में कोई ऐसी जगह नहीं थी जहां कोई-न-कोई खरोंच न हो। अब वह टूटा हुआ, बिखरा हुआ इन्सान था। एक नाकामयाब सपने की तरह मैंने उसे भटकते देखा है। लेकिन भटका सिर्फ उसका व्यक्ति ही, गीत उसका कभी नहीं भटका। उसने जहां भी थोड़ा-सा स्नेह मिलता देखा, उधर ही निकल गया। किन्तु सब मृग-मरीचिका ही सिद्ध हुआ और उसने अपने अरमानों की होली जलानी शुरू कर दी :

कल्पना के पुष्प चुन-चुन स्वप्न थे मैंने सजाये
भावना को साधना कह, गीत कितने गुनगुनाये
जो हुआ अपराध मुझसे, सब हृदय की भावना थी
उन मधुर आकर्षणों में मैं रहा सुध-बुध भुलाये।

याद मत मुझको दिलाओ भूत की भूली कहानी,
आज मैं अरमान की होली जलाकर जा रहा हूं
गीत जो मैंने बनाये थे, मिटाकर आ रहा हूं।

सन् 1953-55 के बीच एक संगीन घटना उसके जीवन में घट चुकी थी, इस कविता को लिखने के बाद से उसके गीतो में पीड़ा का जो सागर लहराया, उसकी कल्पना करके भी रोमांच हो आता है। ये वे दिन थे जब त्यागी अपनी वाणी और लेखनी दोनों के द्वारा असन्तोष से भरी पीड़ा की उपासना में रत था। उन्हीं दिनों त्यागी ने लिखा था :

मेरी आंखें कुछ नम ही रहने दो,
मुझको थोड़ा-सा गम ही सहने दो,

जीवन की आंखें पोंछ सके कोई—
ऐसा आंचल हो तो मुझको ला दो !

×

जो समुन्दर की सतह पर, तैरती हो बाल खोले,
अब उसी बागी लहर के हाथ का कंगन बनूंगा।
मैं रहू प्यासा, यही काफी नहीं है,
होंठ भी मेरे किरन से छील डालो !
फिर उदासी की गुफा में बन्द कर दो
माफ कर दूंगा तुम्हें संसार वालो !
लाज को बे-बात जिसकी, दे गया गाली स्वयंवर,
मै उसी घायल दुल्हन की बेजुबां तड़पन बनूंगा।
आज मैं सुख के लिए चिन्तित नहीं हूं,
दर्द तो यह है कि दुख घटने लगा है।
चल रहा था जिस उदासी के सहारे
हाथ उसका हाथ से छुटने लगा है।
तोड़कर सारे नियम जो कल्पना को पूजती है,
मैं उसी चंचल जवानी का सरल बचपन बनूंगा।

×

तुम कृपण ऐसे कि मेरे मांगने पर,
और क्या आशीष भी तो दे न पाए,
दर्द इतना दे दिया देने लगे यदि—
उम्र-भर भी नींद जो मुझको न आए,

त्यागी ने अपने लिए जिस मार्ग का वरण किया, ज़ाहिर है कि वह साधारण मार्ग नहीं है; बड़ा अनगढ़ और पथरीला मार्ग है वह। इसी कारण उसे अपने अभीष्ट की प्राप्ति में भारी संघर्ष करना पड़ा है। उसके जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप यही है कि उसे समझौता करना नहीं आता, किसी के सामने झुकना नही आता। यही कारण है कि उसका विरोध भी

काफी हुआ है, और हो भी रहा है। इसकी सफाई में त्यागी ने एक जगह पर लिखा है :

मेरे पीछे इसीलिए तो धोकर हाथ पड़ी है दुनिया,
मैंने किसी नुमाइशघर में सजने से इन्कार कर दिया।
मन का घाव हरा रखने को
अनचाहे हंसना पड़ता है,
दीपक की ख़ातिर अंगारा,
अधरों में कसना पड़ता है,
आंखों को रोते रहने का खुद मैंने अधिकार दिया है,
सच को मैंने सुख की ख़ातिर तजने से इन्कार कर दिया।

×

मेरा मोल लगाने का वे दम भरते हैं,
जिनका मन सौ-सौ हाथों नीलाम हुआ है
मैं उनकी ड्योढ़ी का गायक हूं, याचक हूं
विष को छोड़ जिन्होंने अमृत नहीं छुआ है,

हिन्दी में नई पीढ़ी के जितने भी कवि पिछले कुछ वर्षों में उभरे हैं उनमें त्यागी ही मात्र ऐसा कवि है, जिसने सरल शब्दावली में गहरी-से-गहरी अनुभूति गीतों के माध्यम से प्रस्तुत की है। त्यागी के गीत उसके शब्दों के जादू और अर्थ-बोध दोनों ही दृष्टि से हिन्दी-कविता में अपना विशिष्ट स्थान बना चुके हैं। त्यागी का मत है कि "भाव का उद्भव-मात्र ही गीत को जन्म देने के लिए पर्याप्त नही है, वरन् जो भाव मन में जीते-जीते जीवन का दुःख-सुख बन जाता है, वही गीत को जन्म देने में समर्थ होता है।" गीत की परिभाषा में उसने खुद यों लिखा है :

गीत क्या है, सिर्फ छन्दों में सजाई,
आदमी की शब्दमय तसवीर ही तो;
ज्ञान है अज्ञान का उपनाम केवल,
अश्रु ममता की विकल तकरीर ही तो

×

ये मन की गहराई से निकले हैं,
जीवन की अमराई से निकले है,
ये यौवन की रामायण-जैसे हैं,
ये स्वर की शहनाई से निकले हैं;

गीत की महिमा का वर्णन त्यागी ने अपनी कविताओं में अनेक स्थानों पर सूक्ति के रूप में किया है। दो उदाहरण इस प्रकार हैं :

डगमगाई नाव जब-जब भी किसी की
गीत ने हंसकर किनारा दे दिया,
उस दिये का मोल बोलो कौन देगा,
आँधियों के रोष को जिसने पिया ?
लाख चांदी को पसारो,
किन्तु तन के साहुकारो,
प्यार के निर्धन वचन बिकते नहीं हैं।

×

गीत की डोर को ही पकड़कर बढ़ो,
फूल हो तो किसी देवता पर चढ़ो,
घंटियों की तरह तुम जहाँ बज उठो,
मैं वहीं प्रार्थना की तरह गा उठूँ,

त्यागी ने इन गीतों के निर्माण में अपने जीवन का सर्वस्व तक होम दिया है। जीवन का सारा हास-उल्लास तक उसने अपने गीतों में समो कर मानव-जगत् के कल्याण के लिए रख दिया है। इन गीतों के निर्माण में उसे कितना त्याग करना पड़ा है, इसका अनुमान आप उसकी इन पंक्तियों से लगा सकते हैं। उसका कहना है :

जितने गीत रचे हैं मैंने,
इस लम्बी बीमार उमर में,
उन सबको बेचूं तो शायद,
आधा कफन मुझे मिल जाए।

मैं न जनम लेता तो शायद
रह जातीं विपताएँ क्वाँरी
मुझको याद नहीं है मैंने
सोकर कोई रात गुज़ारी
मुझको अपनी निष्ठाओं का
कुछ तो फल मिलना है आख़िर
मेरे बाद बहुत सम्भव है
सारी धरन मुझे मिल जाए।

त्यागी के जीवन में जितनी पीड़ा, वेदना और कसक है, यदि उतनी पीडा किसी और व्यक्ति ने जीवन में सही होती तो कदाचित् वह पागल हो जाता। उसने अपनी पीड़ा को अपने इन गीतों में उँडेलकर वास्तव में एक प्रशंसनीय कार्य किया है। कदाचित् उसका कोई भी ऐसा गीत नहीं, जिसको पढ़कर या सुनकर हिन्दी का कोई भी सहृदय पाठक या प्रेमी झूम न उठे, छलछला न उठे। आज हिन्दी के कवि-सम्मेलन जो इतने लोकप्रिय हो रहे हैं, उनकी लोकप्रियता में यदि किसी कवि ने साहित्यिकता को उल्लेखनीय रूप से जोड़ा है, तो वह रामावतार त्यागी है। उसकी रचनाओं और उसके गीतों की सफलता का एक कारण यह भी है कि वह उनके द्वारा हिन्दी में नई भाषा, नये मुहावरे, नई उपमाएँ और नये छन्द लाया है। हिन्दी के मूर्धन्य कवि श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' ने उसके कवित्व की प्रशंसा करते हुए उसकी नई काव्य-कृति 'आठवाँ स्वर' की भूमिका में लिखा है—"त्यागी के गीत मुझे बहुत पसन्द आते हैं। उसके रोने, उसके हँसने, उसके बिदकने और चिढ़ने, यहाँ तक कि उसके गर्व में भी एक अदा है, जो मन को मोह लेती है।"

इसी प्रकार डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' ने त्यागी के सम्बन्ध में कहा है—"त्यागी प्रणय की विभिन्न परिस्थितियों का जिस मार्मिकता से चित्रण करते हैं, वह अद्वितीय है। सहज भाषा लिखने में वह हिन्दी के आधुनिक गीतकारों में सबसे आगे हैं। अछूती उपमाएँ, ताज़ी सूक्तियाँ और मौलिक

प्रयोग त्यागी जी की कविता के ऐसे गुण हैं, जो गीतकारों के लिए ही नहीं, प्रयोगवादियों के लिए भी आदर्श हो सकते हैं।"

ये दो उदाहरण तो हिन्दी की दो पीढ़ियों का प्रतिनिधित्व करते हैं, लेकिन उसके पाठकों का उसकी रचनाओं के सम्बन्ध में जो अभिमत है, वह अधिक वास्तविक है। एक पाठक ने उसको अपने एक पत्र में महोबा से लिखा है – "आपके गीतों में कुछ इतनी पीड़ा और कसक मिलती है कि अकेला मैं ही नहीं, मेरे-जैसे कितने अनेक पाठक उसमें अलग-अलग अपनी-अपनी तस्वीर देखते हैं।"

त्यागी की लोकप्रियता का सबसे बड़ा कारण यह है कि उसने संसार के पीड़ित, तिरस्कृत और लांछित वर्ग की पीड़ा को अपनी ही पीड़ा समझकर उस भाषा में चित्रित किया है, जो जन साधारण की है, और जिसे स्वाभाविक बनाने में उसके छन्दों ने पर्याप्त सहायता दी है। कभी-कभी त्यागी ने अपने इन गीतों में प्राणों की वह संजीवनी पाठकों को प्रदान की है कि बहुत-से लोगों ने उनसे पर्याप्त प्रेरणा ग्रहण की है। किसी कवि की कविता पढ़कर कोई व्यक्ति अगर आत्म-हत्या करने का अपना इरादा बदल दे, तो इसे आप क्या कहेंगे? रामपुर के एक ऐसे ही व्यक्ति ने त्यागी को पत्र लिखा, जो जीवन से निराश होकर आत्महत्या करने तक का निश्चय कर चुका था। उसने अपना निश्चय त्यागी की कविता पढ़कर बदल दिया और अपने पत्र में लिखा –"मैंने आपकी रचना पढ़कर ही अपना विचार बदला। उसने मुझे जीने की प्रेरणा दी। धन्यवाद।"

त्यागी जीवन में सौन्दर्य और अनुभूति का चित्रण करने वाला कवि है। उसके गीतों में जहाँ सन्ध्या के डूबते हुए सूर्य की सुनहली छाया है, वहाँ उसने संसार की वेदना को अपने गीतों के गंगा-जल के समान पवित्र आंसुओं से पखारा है! धूल और आंसुओं से लिपटे त्यागी के गीत हृदय की उष्णता में तपकर बाहर निकले हैं, और वे कंचन के समान खरे लगते हैं। नपे-तुले शब्दों में लिखे गए त्यागी के गीत स्नेह-शिखर से झरते हुए झरने के समान मानव-मन की अतल गहराइयों में पैठकर उसे इस प्रकार

आप्लावित कर देते हैं कि ऐसा लगने लगता है जैसे जीवन के सफेद-सफेद फूलों पर गीतों की रंग-बिरंगी तितलियां छोटे-छोटे पंख पसारकर उड़ रही हों।उसके गीतों की सादगी ने त्यागी को अपने पाठकों के मन में जो स्थान दिलाया है, वह आज की पीढ़ी के कवियों के लिए ईर्ष्या की वस्तु है। उसके गीतों में बातचीत का ऐसा लहज़ा होता है कि वह साधारण पाठक के मन को अपील कर जाता है, छू जाता है। कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं :

मंदिर में सौगन्ध दिला लो
मुझसे गंगा-जल उठवा लो

×

मैं चला आया निमन्त्रण पर तुम्हारे
द्वार तक भी क्या न पहुंचाने चलोगे ?

×

मेरे पीछे धोकर हाथ पड़ी है दुनिया

×

एक कोई है कि जिसका ध्यान करके
गांठ आंचल में लगाकर जोड़ लेते।

×

मृत्यु की भाषा कठिन होती बहुत ही
ज़िन्दगी उसका सरलतम व्याकरण है।

×

त्यागी ने गीतों के क्षेत्र में जो सफलता प्राप्त की है, वह उसकी पीढ़ी के बहुत कम कवियों को मिली है। इतनी छोटी-सी उम्र में उसने जहां हिन्दी के साधारण-से-साधारण पाठक का प्यार और दुलार प्राप्त किया, वहां प्राचीन पीढी के लिए भी वह एक कौतूहल का स्रष्टा रहा। यह त्यागी की सफलता नहीं तो क्या है कि दिल्ली की एक गोष्ठी में हिन्दी के शीर्षस्थ कवि डॉ० हरिवंशराय 'बच्चन' ने यह कहा था—"रामावतार त्यागी आज

की पीढ़ी के कवियों में भारत-भर में अकेला है। वह गीतों का बादशाह है।" किसी ने उसे मज़ाज बताया, और किसी ने जिगर; लेकिन वह सिर्फ़ त्यागी है, जो बिलकुल मौलिक है, बिलकुल ताज़ा है।

त्यागी ने अपनी पीड़ा, वेदना और व्याकुलता को जहां अपने काव्य का माध्यम बनाया है, वहां उसने अपने गीतों में ऐसी अनेक विचार-सूक्तियां भी लिखी हैं, जो हिन्दी के प्रत्येक वर्ग के पाठक के लिए पठनीय ही नहीं, मननीय भी हैं। कुछ उदाहरण लीजिए :

कलियों की बेदाग़ ताज़गी,
पूजा के कुछ काम न आई,
बासी फूल चढ़े मंदिर में,
अनुभव की दी गई दुहाई,

×

पाप बचपन ने न जाने क्या किया है,
शाप यौवन का किसी ने दे दिया है,
इसलिए बेचैन से मिलते सभी हैं,
अनमने-से राह पर चलते सभी हैं।

×

माना मिट्टी का एक खिलौना हूं
लेकिन कुछ का मन तो बहलाया है,
आख़िर इतना बेकार नहीं हूं मैं
जो कोई जग के काम न आया है।

×

सुधि का दीप जला लेने से
दुख आपस में बंट जाता है
रोशनदान खुले रखने से
कुछ सूनापन घट जाता है।

×

मेरे जीवन के सूने आंगन में
जिसने दुख का मेहमान बसाया है
वह मेरे लिए न ईश्वर से कम है
जिसने मेरा सुनसान घटाया है।

×

समय का महाजन बड़ा ही कृपण है
निवेदन किया, किन्तु देता न ऋण है।

त्यागी ने कविता के क्षेत्र में तो यश प्राप्त किया ही, सांसारिक क्षेत्र में भी उसने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया।

सन् 1955 में उसके जीवन में एक संगीन घटना घट गई। यों इस दर्दनाक कहानी का आरम्भ सन् 1954 में ही हो चुका था। उसके स्नेह-सिक्त और विषादमय जीवन में अचानक एक सुबह ऐसी किरण उतरी कि जिसने उसकी अंधेरी दुनिया को जगमगा दिया। गरज़ कि जब त्यागी मायूस होकर दिल्ली की अंधेरी और तंग गलियों में रोशनी की खोज में भटक रहा था, तभी उसके झुलसते मस्तक पर एक कोमल हथेली ने शीतलता बिखेर दी। यह हथेली किसकी थी, इसकी चर्चा मैं जान-बूझकर नहीं करूंगा। अक्सर मैने, औरों ने, और शायद सभी ने त्यागी को उन दिनों अकेला कभी नहीं देखा था। जब देखा, तभी उस परिचित और सौम्य चेहरे के साथ। असली नाम जाने उसका क्या था, लेकिन त्यागी की 'चरित्र हीन के पत्र' नामक पुस्तक के मुताबिक उसका कल्पित नाम 'सोमी' है।

त्यागी की ज़िन्दगी का शायद सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह रहा है कि उसकी छोटी-से-छोटी खुशी से लगा हुआ कोई इतना बड़ा गम उसके साथ ज़रूर आया है कि मुसकराने के लिए उसे एक पल भी नही मिला। जिस दिन यह रूप-किरण त्यागी के आंगन में उतरी, उसी शाम 'रामरूप विद्यामंदिर' से उसकी नौकरी छूट गई। फिर भी उन दिनों वह खुश नज़र आता था। हालांकि मैं अचरज से उसके तंग हाल को देखता था और सोचता था कि न जाने कैसा यह आदमी है जिसे रोटी से ज्यादा भूख प्यार की है।

त्यागी की ज़िन्दगी की वह रंगीन (या जैसी भी हो) कहानी चली, और चलती गई। इसके बारे में त्यागी ने अपनी पुस्तक 'चरित्रहीन के पत्र' में खुद लिखा है—

"दिवाली आई और चांद के तारे-जैसा एक चांदी का चिराग लेकर तुम मेरे घर आई थीं, क्योंकि तुम्हें मालूम था कि तुम न आई तो मेरे घर रोशनी को जन्म नहीं मिलेगा।

"उन दिनों तुम्हें मेरे स्वप्न आते थे, नींद में अक्सर तुम मेरी आहटों से चौंक उठती थीं। ढेर-सा दर्द न जाने कहां से तुम्हारे मन में समा गया था। और एक भी दिन ऐसा नहीं होता था जब तुम अपने आंसुओं से मेरी छाती को पानी-पानी न कर देती थीं।

"मुझे याद है, रात को जब मैं तुम्हारे घर से विदा होता था तो द्वार तक तुम मुझे प्रकाश दिखाने आती थीं। कई बार तुम कह चुकी थीं कि जब मैं तुम्हे विदा करके लौटती हूँ तो लौटकर तब तक उस मोमबत्ती को नहीं बुझाती जब तक मुझे यह यकीन न हो जाय कि तुमने अपने कमरे की रोशनी जला ली होगी। कभी-कभी तो मैं तुम्हारे जाने के बाद इतनी ज़ोर से सिसक उठती हूं कि कई दिन तक माँ के सवालों के जवाब सोच-सोचकर देने होते हैं।"

आखिर दो वर्ष तक बेकार रहने के बाद उसे 'समाज' के सम्पादन का काम मिल गया। रोटी घर आई, तो प्यार जा चुका था। क्यों चला गया, कुछ मालूम नही। शायद इसीलिए कि हमेशा खुशी के साथ ग़म उसकी ज़िन्दगी में आता ही रहा है। अब त्यागी वह त्यागी नही था, बल्कि लगता था कि दर्द आदमी की देह धारण किये भटक रहा है। बदनाम गलियों में, शराबखानों में, खंडहरों में, बियाबान जगहों पर, जब भी देखो, उदासी में डूबा, चुपचाप पागलों की तरह वह घूमता रहता था। परिणाम-स्वरूप लम्बी बीमारी ने दौड़कर उसका हाथ पकड़ लिया। उसकी मनःस्थिति उसके इन वाक्यों में अंकित है :

"रात का यह वक्त, शायद काफी बजे होंगे, मैं लेटा हूं, गुर्दे में फिर

हल्का-हल्का दर्द हो रहा है। डॉक्टर तक जाने की हिम्मत नहीं, दर्द को सहने का बल नहीं। चारों तरफ मौत मंडरा रही है, लेकिन पास नहीं आती। इस सुनसान में मुझे एक ही स्वर सुनाई देता है। एक झनझना-हट जो बार-बार मुझसे कहती है कि जब तुम्हारा स्वर मेरी तरह गूंजने लगे तब तुम इस बेकरारी से मुक्त हो जाओगे।"

ये वे दिन थे, जब त्यागी 'समाज' का सम्पादन करता था। लेकिन बड़ी लाचारी, मायूसी के दिन थे वे। किसी भी काम में उसका मन नहीं लगता था। आख़िर महावीर अधिकारी 'समाज' से छुड़ाकर उसे अपने साथ 'समाज कल्याण' में ले गए। जगह बदल जाने पर भी दर्द नहीं बदला। स्वभाव इतना चिड़चिड़ा हो गया था कि त्यागी एक दिन खुद अधिकारी जी से भी झगड़ बैठा और नौकरी छोड़कर फिर बेकारी-बेरोज़गारी के आलम में आ पहुंचा।

यहां यह उल्लेखनीय है कि 'समाज' में 6 महीने तथा 'समाज-कल्याण' में लगभग एक वर्ष कार्य करने के अतिरिक्त त्यागी ने कुछ दिन 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में भी काम किया है। वह कहीं भी जमकर काम नहीं करता, उसके सभी हितैषी नाराज़ है। लेकिन यह आश्चर्य की बात है कि अब उसके जीवन में कुछ स्थायित्व आ गया है। पिछले लगभग सवा साल से, जब से वह 'नवभारत टाइम्स' के सम्पादकीय विभाग में कार्य करने लगा है, उसमें कुछ दुनियादारी आ गई है, उसे नौकरी करनी आ गई है। कदाचित् इसका कारण उसकी दूसरी शादी हैं, जो उसने पिछले वर्ष (1960) 26 जनवरी को नागपुर के एक पजाबी परिवार की एक महिला सुश्री सुयश, एम० ए०, बी०टी०से की है। अब तो पहली पत्नी से प्राप्त उसकी एकमात्र ।। वर्षीया कन्या राजबाला भी त्यागी के पास ही दिल्ली में रहकर पढ़ रही है और त्यागी अपने परिवार के लोगों के निर्वाह के लिए भी तीस रुपये मासिक बराबर भेजता जा रहा है।

सन् 1955 से 1958 तक की त्यागी की जो भी रचनाएं हैं, वे ऐसी हैं जिनके आधार पर उसे 'पीड़ा का गायक' कहा जा सकता है।

शायद पीड़ा की इतनी सजीव अभिव्यक्ति भक्तिकालीन कुछ कवियों को छोड़कर हिन्दी के किसी कवि की रचनाओं में नहीं मिलती। उसकी इसी दौर की चुनी हुई रचनाओं का संकलन 'आठवां स्वर' है, जिसमें त्यागी के कवि की अमरता निवास करती है। त्यागी का पहला कव्य-संग्रह 'नया खून' 1953 में प्रकाशित हुआ था। उसमें उसकी असन्तोष, विद्रोह और क्रान्ति से परिपूर्ण वे रचनाएं संकलित हैं, जिनके कारण त्यागी ने कविता की विशाल अट्टालिका में अपने लिए उल्लेखनीय स्थान बनाया है। त्यागी ने एक उपन्यास भी लिखा है, जिसका नाम 'समाधान' है। इसके अतिरिक्त 'मैं दिल्ली हूं' नामक एक छोटा-सा बालोपयोगी काव्य भी उसने लिखा है, जिस पर भारत सरकार के शिक्षा-सचिवालय ने पुरस्कार भी प्रदान किया है। त्यागी के 'आठवां स्वर' को पिछले वर्ष उत्तर प्रदेश सरकार ने भी पुरस्कृत किया था। 'राजधानी के कवि' के अतिरिक्त त्यागी की साहित्यिक प्रतिभा और उसकी सूझ-बूझ का परिचय 'प्रगीति' नामक उस त्रैमासिक पत्र के पहले अंक को देखने से मिलता है, जो उसने श्री बालस्वरूप 'राही' के सहयोग से सम्पादित किया था, और जो केवल अपने जन्म की घोषणा करके साधनों के अभाव में असमय ही मौत की नींद सो गया।

त्यागी अब कवि होने के साथ-साथ एक अच्छे गृहस्थ-जैसा जीवन जी रहा है, यह कम आश्चर्य की बात नहीं। कारण कि जिसने पुराने त्यागी को देखा है, उसको स्वप्न में भी गुमान नही हो सकता कि त्यागी इतना बदल चुका है। किन्तु इसका आशय यह कदापि नहीं कि कविता से उसका दामन छूट गया है। बात असल यह है कि अब तो उसने जमकर लिखना शुरू किया है। उसके जीवन में जो अतृप्ति, असन्तोष, विद्रोह और वितृष्णा थी, वह सब दूर होकर अब उसकी प्रतिभा हिन्दी-गीत-काव्य को नई शब्दावली, नई अभिव्यक्ति, सूक्तियां, भाव-भूमि और छन्द-विधान देने में लगी है। हिन्दी-कविता में विदेशी सस्कृति को लाने को उत्सुक प्रयोगवादी कवि-आलोचकों ने जब हिन्दी-गीति-काव्य पर पुनरावृत्ति, पुरानेपन और

अक्षमता जैसे आरोप लगाये तो जिनके हाथों में हिन्दी के गीत-काव्य की पताका थी वे अलमबरदार भी बहक गए। तब हर नये विचार और भाव को नई शब्दावली से परिपूर्ण सरस अभिव्यक्ति देने की गीत की क्षमता को जिन कवियों ने घोषित किया उनमें त्यागी का नाम पहली पंक्ति में आता है। आज की पीढ़ी में हिन्दी में ऐसे कवि कम ही होंगे, जिन्होंने इतनी अधिक संख्या में इतनी श्रेष्ठ रचनाएं हिन्दी को दी हों, जितनी कि त्यागी ने।

किसी भी कवि के व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व को आंकने के लिए यह जानना जरूरी है कि उसके सम्बन्ध में उससे बड़े, उसके समकालीन और उसके पाठक क्या विचार रखते हैं। पिछली पंक्तियों में हम त्यागी के संबंध में हिन्दी के कुछ मूर्धन्य साहित्यकारों के अभिमत दे चुके हैं। अब आप देखें कि त्यागी के बिलकुल समकालीन कवि और उसके अनन्य स्नेही श्री बालस्वरूप 'राही' उसकी 'आदतों को छोड़िए भी, आदमी वैसे गुणी हूं' नामक पंक्ति को ही त्यागी का परिचय मानकर उसके सम्बन्ध में क्या लिखते हैं :

"उसका जीवन उत्तरदायित्त्वहीनता, घुटन, संघर्ष और फाकामस्ती की एक अनन्त श्रृंखला, उसका व्यक्तित्त्व परस्पर-विरोधी असंगतियों का एक विलक्षण संगठन। प्यार करे तो ज़िन्दगी निसार कर दे, नाराज़ हो जाय तो औपचारिकता भी नहीं बरत सकता। विद्रोह और मोह, अहं और समर्पण का ऐसा अद्भुत संयोग मैंने कहीं नहीं देखा। अविनम्रता की सीमा को छूता हुआ स्वाभिमान, असहिष्णुता तक पहुंचने वाली संवेदनशीलता, तुनकमिज़ाजी, ये उसके व्यक्तित्त्व के दो खास पहलू हैं। सोचता हूं, इतने निर्मम व्यक्ति ने इतनी सहृदयता कहां से पाई। पर यह भी सच है कि निर्झर चट्टान का वक्ष तोड़कर ही प्रवहमान होते हैं।"

त्यागी के एक पाठक के पत्र का उल्लेख करके मैं इस वक्तव्य को समाप्त करूंगा। यह त्यागी की लोकप्रियता नहीं तो और क्या है कि उसकी रचनाओं को पढ़ने के लिए आतुर एक पाठक ने उसको अपने 10 दिसम्बर, 1960 के पत्र में लिखा :

"दो रुपये के डाक-टिकट पत्र के साथ भेज रहा हूं, 'आठवां स्वर' के लिए। सम्भव हो तो भिजवा दीजियेगा। शेष कीमत अगले मास भेज दूंगा। चाहूंगा कि साथ में अपनी एक अन्य पुस्तक भी रखवा दें। विश्वास करें, सुविधानुसार कीमत भेज दूंगा।"

यह साधारण पत्र नहीं है। त्यागी ने अपने पाठकों का एक वर्ग बना छोड़ा है, जो उसके पीछे भी उसकी इस परम्परा को आगे बढ़ाने में सहायक होगा। उक्त पाठक ने अपने इसी पत्र में त्यागी की प्रशस्ति में 'रुबाइयां' भी लिखी थीं। उनमें से एक यों है :

"छलकता हुआ इक जाम है त्यागी
दिल की दुनिया में सरनाम है त्यागी
वास्तविक नाम तो कुछ और है शायद,
यह तो उसका उपनाम है त्यागी।"

अजय निवास, दिलशाद कालोनी
शाहदरा, दिल्ली-32

—क्षेमचन्द्र 'सुमन'

क्रम

मेरी थकन उतर जाती है	:	33
एक भी आंसू न कर बेकार	:	34
वे भी सुमन तुम्हारे ही थे	:	35
जिन्दगी आरम्भ होती है	:	36
अपना अहम् नहीं बेचूंगा	:	39
गीतों का गंगाजल	:	41
सागर से यह बात कहूंगा	:	43
मन की उजली किरणों से बांध मुझे	:	45
सबसे अधिक तुम्हीं रोओगे	:	47
अहसान भुलाऊंगा कैसे	:	49
जैसे कोई बनजारा लुट जाए	:	51
भयभीत उसी लोचन के जल से हूं	:	53
जब मिलेगी रोशनी मुझसे मिलेगी	:	54
द्वार तक भी क्या न पहुंचाने चलोगे	:	56
यह सिन्दूर लगाया मैंने	:	58
तुमने पलकों में सावन घोल दिया	:	59
उस लहर के हाथ का कंगन बनूंगा	:	61
जो सम्बन्ध स्वयंवर का सिन्दूर से	:	63
कली को न आया अभी मुस्कुराना	:	65
खिलौना : एक उद्‌बोधन	:	67
द्वार पर शहनाइयां बजवा रहा हूं	:	69
तुमसे एक बात कहता हूं	:	71
गीत जग-भर के दुखों की आत्मा है	:	73
आंख से आंसू पिला दो	:	75

उसकी बात नहीं टालूंगा : 77
अर्चना को क्या हुआ है : 79
सबका घर पहचाना-सा लगता है : 81
संदेश-गीत : 83
अंतिम गीत : 85
गीत यह मेरा नहीं है : 87
कीमत भी देता हूं : 88
भाल पर रख दी हथेली : 89
आओ गुलाब बोयें : 90
ये मेरी आंखें हैं : 91
दर्द का अनुवाद कब करते : 93
मन दिया है दो जगह : 94
और मैं कैद हूं : 95
उतना ऋण काफी है : 96
बुझते दीप का आत्म निवेदन : 97
मौलिक सपने भटक रहे हैं : 99
जब वे नयन याद आते हैं : 101
सभाएं बन्द कर : 103
गीत नहीं, मैं आग लिखूंगा : 104
यह तुम मुझे कहां ले आए ? : 106
मन का संविधान : 108
परिशिष्ट : 110

मेरी थकन उतर जाती है

हारे-थके मुसाफिर के चरणों को धोकर पी लेने से
मैंने अक्सर यह देखा है मेरी थकन उतर जाती है।

कोई ठोकर लगी अचानक
जब-जब चला सावधानी से
पर बेहोशी में मंजिल तक
जा पहुँचा हूँ आसानी से

रोने वाले के अधरों पर अपनी मुरली र देने से
मैंने अक्सर यह देखा है, मेरी तृष्णा मर जाती है।

प्यासे अधरों को बिन परसे
पुण्य नहीं मिलता पानी से
याचक का आशीष लिए बिन
स्वर्ग नहीं मिलता दानी को

खाली पात्र किसी का अपनो प्यास बुझाकर भर देने से
मैंने अक्सर यह देखा है, मेरी गागर भर जाती है।

लालच दिया मुक्ति का जिसने
वह ईश्वर पूजना नहीं है
बनकर वेद-मंत्र सा मुझको
मन्दिर में गूँजना नहीं है

संकट-ग्रस्त किसी नाविक को निज पतवार थमा देने से
मैंने अक्सर यह देखा है, मेरी नौका तर जाती है।

एक भी आंसू न कर बेकार

एक भी आंसू न कर बेकार—
जाने कब समन्दर मांगने आ जाय !

पास प्यासे के कुआं आता नहीं है,
यह कहावत है, अमरवाणी नहीं है;
और जिसके पास देने को न कुछ भी
एक भी ऐसा यहाँ प्राणी नहीं है;

कर स्वयं हर गीत का शृंगार
जाने देवता को कौन-सा भा जाय !

चोट खाकर टूटते हैं सिर्फ़ दर्पण
किन्तु आकृतियां कभी टूटी नहीं हैं;
आदमी से रूठ जाता है सभी कुछ—
पर समस्याएं कभी रूठी नहीं हैं;

हर छलकते अश्रु को कर प्यार—
जाने आत्मा को कौन नहला जाय !

व्यर्थ है करना ख़ुशामद रास्तों की
काम अपने पांव ही आते सफ़र में;
वह न ईश्वर के उठाए भी उठेगा—
जो स्वयं गिर जाय अपनी ही नज़र में,

हर लहर का कर प्रणय स्वीकार—
जाने कौन तट के पास पहुँचा जाय !

वे भी सुमन तुम्हारे ही थे

मैं तुम तक कैसे आ पाता; मुझको पांव मिले ही कब थे;
जो ले आये मुझे यहां तक वे भी चरण तुम्हारे ही थे।

तुमको खुश रखने को आँधी
कन्धे मुझे बिठाए घूमी
चढ़ती हुई नदी ने मेरे
तलुवों की परछाई चूमी

मैं कैसे दर्शन पा लेता; मैं तो था अन्धा समाज-सा
जो ले आये मुझे द्वार तक वे भी नयन तुम्हारे ही थे!

तुमने जो छू दिया अधर से,
मैं वंशी-सा लगा गूँजने
और मुझे देवता समझकर
यह वृन्दावन लगा पूजने

कैसे सामवेद रच देता; मैं तो था गूंगे सितार-सा,
जो दो-चार गीत बन उभरे—वे भी वचन तुम्हारे ही थे।

जीवन नाप सकेगा कैसे,
जीवन की गहराई पूरी
जिसको ज्ञात नहीं है कितनी
घर से मरघट तक की दूरी

मैं उपवन कैसे बन जाता; मैं तो बांझ लता जैसा था,
जो दो-चार खिले थे मुझ पर—वे भी सुमन तुम्हारे ही थे!

ज़िन्दगी आरम्भ होती है

जहां तक भी नज़र जाती धुआं ही हाथ आता है,
कहीं भी जल नहीं है सिर्फ रेगिस्तान गाता है,
कहीं भी घुंघरू की गूंज का धोखा नहीं होता,
विवशता इस कदर है आदमी खुलकर नहीं रोता,
यहीं से, हां, यहीं से ज़िन्दगी आरम्भ होती है!

खड़ी हैं बांह फैलाए हुए हर ओर चट्टानें,
गुज़रतीं बिजलियाँ अपनी कमानें हाथ में ताने,
गज़ब का एक सन्नाटा कहीं पत्ता नहीं हिलता,
किसी कमज़ोर तिनके का समर्थन तक नहीं मिलता,
कभी उन्माद हंसता है, कभी उम्मीद रोती है।
यहीं से, हाँ, यहीं से ज़िन्दगी आरम्भ होती है।

बराए नाम जीते हैं, बराए नाम मरते हैं,
उनींदी आंख से टूटे हुए सपने गुज़रते हैं,
उजाले और अपने बीच का पर्दा नहीं उठता,
सुबह आए न आए रात से पीछा नहीं छुटता,
उदासी साथ जगती है, उदासी साथ सोती है।
यहीं से, हां, यहीं से ज़िन्दगी आरम्भ होती है।

बनाने के लिए हमने स्वयं क़िस्मत बनाई है,
विफलता मात्र पूंजी है, निराशा ही कमाई है,
जलन से दोस्ती है, उलझनों से आशनाई है,
लड़ाई है, अगर, अस्तित्व से अपने लड़ाई है,
स्वयं पतवार कश्तो को किनारे पर डुबोती है।
यहीं से, हां यहीं से ज़िन्दगी आरम्भ होती है !

खुशी अक्सर ज़माने से हमें आवाज़ा देती है,
रुकावट दायरा बनकर हमेशा घेर लेती है,
कभी मेला लगा रहता पुकारों का, खयालों का;
कभी उत्तर नहीं मिलता बड़े भोले सवालो का,
न कुछ भी पास केवल आँख में ही एक मोती है !
यही से, हाँ, यहीं से ज़िन्दगी आरम्भ होती है !

हमें जागा हुआ पाकर हमेशा रात हँसती है,
शरद की रात में भी आग अम्बर से बरसती है,
जिसे भी देख दें हम वह सितारा टूट जाता है,
अगर धारा पकड़ते हैं किनारा छूट जाता है,
कली हंसती कभी तो आंख में कांटे चुभोती है !
यहीं से, हाँ, यहीं से ज़िन्दगी आरम्भ होती है !

कभी शमशान की धमकी, कभी तूफ़ान की गाली,
हमारी उम्र का प्याला कभी ग़म से नहीं खाली,
मरुस्थल पर सुबह से शाम तक बादल बरसते हैं,
समन्दर में बसे हैं हम मगर जल को तरसते हैं,
हमारे होंठ आकर मौत चुम्बन से भिगोती है।
यहीं से, हां. यहीं से ज़िन्दगी आरम्भ होती है !

भंवर में डूब जाते हैं अगर तो तर गए हैं हम,
जिलाने के लिए तस्वीर को खुद मर गए हैं हम,
किसी बारात में शामिल हमारा दिल नहीं होता,
हमारी राह का कोई सिरा मंज़िल नहीं होता,
समझ सिन्दूर हमको मांग में आँधी सँजोती है।
यहीं से, हां, यहीं से ज़िन्दगी आरम्भ होती है!

अपना अहम् नहीं बेचूंगा

मेरे सपनों को सूली पर लटका दो तुम बड़ी ख़ुशी से,
पर मैं बेईमान समय को अपना अहम् नहीं बेचूंगा !

कुछ भी मुझे कहेगी दुनिया
लेकिन कायर नहीं कहेगी
मैं न रहूंगा यह तो सच है
पर मेरी आस्था रहेगी

मेरी ख़ुशियों को चाहे जब ज़िन्दा मरघट में दफ़ना दो,
लेकिन मैं बदचलन पतन को अपना जन्म नहीं बेचूंगा !

दीपक बिक सकता है जिसका
अन्तर ज्योतिमान नहीं है
पर अंगारे को ख़रीदना
दुनिया में आसान नहीं है

मेरे गीत रहें जीवन भर चाहे कारावास भोगते,
लेकिन मैं गुमराह स्वर्ण को अपनी कलम नहीं बेचूंगा !

दूकानों में होड़ लगी है
ईमानों को खरीदने की
रेगिस्तानों ने ज़िद पकड़ी
उद्यानों को खरीदने की

मेरे दर्पण को यदि सम्भव हो तो खंड-खंड कर डालो,
लेकिन मैं तन की इच्छा पर मन का नियम नहीं बेचूंगा !

कल्पित किंवदन्तियों जैसी
मेरी जीवन-कथा नहीं है
मेरी रचना विज्ञापन के
स्वामी की अनुगता नहीं है

सूनी काल कोठरी में ही सारी उम्र बिता दूंगा मैं,
लेकिन किसी मोह को अपने कवि का धरम नहीं बेचूंगा!

गीतों का गंगाजल

मन का सारा कल्मष धुल जाएगा—
थोड़ा अपनी आँखों का जल पी लो!
थोड़ा गीतों का गंगाजल पी लो!

ये स्नेह-शिखर से बहकर आए हैं,
सबको पालागन कहकर आए हैं;
ये जन्मे हैं सपनों की गलियों में—
ये ईश्वर के घर रहकर आए हैं;

तन का सारा अपयश धुल जाएगा—
थोड़ा-सा दुख का हालाहल पी लो!
थोड़ा गीतों का गंगाजल पी लो!

ये मन की गहराई से निकले हैं,
जीवन की अमराई से निकले हैं;
ये यौवन की रामायण-जैसे हैं—
ये स्वर की शहनाई से निकले हैं;

जीवन का सूनापन गल जाएगा—
थोड़ा-सा जग का कोलाहल पी लो!
थोड़ा गीतों का गंगाजल पी लो!

सावन इनकी आंखों में बसता है,
फागुन इनके पाँवों पर हंसता है ;
सबके सुख-दुख में शामिल होते हैं—
इनका सारी दुनिया से रिश्ता है;

जो बिछुड़ा वह साथी मिल जाएगा—
थोड़ा-सा हंसकर विरहानल पी लो !
थोड़ा गीतों का गंगाजल पी लो !

ये अनब्याहे नैनों की भाषा-से;
ये मौन समर्पण की परिभाषा-से;
जिसकी पूजा हर पनघट करता है—
ये ऐसी कोई पुण्य-पिपासा-से;

जब चाहोगे दीपक जल जाएगा—
थोड़ा अंधियारे का काजल पी लो !
थोड़ा गीतों का गंगाजल पी लो !

सागर से यह बात कहूंगा

गंगा मैया तेरे तट पर बसकर भी मैं रहा पिपासित—
अपने प्यासे अधर दिखाकर सागर से यह बात कहूँगा।

बूंदों की तदीक़र पी गईं,
ये कैसी जलभरी घटाएँ !
कोकिल का संगीत डस लिया—
कलियाँ हैं या विषकन्याएँ !

धरती मां, तेरे आँगन में खिलकर भी रह गया उदासा—
अपनी सारी उमर दिखाकर अम्बर से यह बात कहूंगा।

लालच ने खारे सागर से
यमुना की भांवर डलवा दी,
मेरा दोष हुआ पनघट को
मैंने अपनी प्यास दिखा दी;

शूलों के भय से फूलों ने गीतों का अपमान कर दिया—
मधुवन की सौगन्ध उठाकर मधुकर से यह बात कहूंगा।

चांदी के संकेतों पर ही
अब तक रोज़ सभ्यता नाची,
जड़ से पुरस्कार पाने को
पंडित ने रामायण बांची;

शरणागत पल्लव दुनिया ने आंधी को नीलाम कर दिया—
दुनिया वालो, शोर मचाकर तरुवर से यह बात कहूंगा।

कलियों की बेदाग़ ताज़गी
पूजा के कुछ काम न आई,
बासी फूल चढ़े मन्दिर में
अनुभव को दी गई दुहाई;

अर्पित निष्ठा की पावनता मन्दिर ने दूषित ठहरा दी—
अपनी पूरी शक्ति लगाकर ईश्वर से यह बात कहूंगा।

मन की उजली किरणों से बांध मुझे

मन की उजली किरणों से बाँध मुझे
काजल की डोरी पर विश्वास न कर!

शब्दों के इतने बाण नहीं साधो,
आँसू की हल्की चोट बहुत होगी;
मुझसे छिपने को शीशमहल ही क्या-
पलकों की झीनी ओट बहुत होगी;

पहचान समर्पण की कुछ महिमा भी—
केवल बरजोरी पर विश्वास न कर!

सूरज के बन्द नयन से जो निकला,
तुम चाँद कहो उसको चाहे पूनम;
रोई करुणा जो बैठ अँधेरे में—
तुम ओस कहो उसको चाहे शबनम,

थोड़ा-सा काम विचारों से भी ले—
आँखों की चोरी पर विश्वास न कर!

जीवन सपने की कल्पित काया है,
चेतनता केवल माटी का भ्रम है;
पायल जिसको हंसकर दोहराती है—
वह पग की मज़बूरी का सरगम है;

चन्दा पाने को बादल-जैसा बन—
इस बुद्धि-चकोरी पर विश्वास न कर!

कितने संसार रचाने वाला मैं,
आकर ऐसा खोया हूं दुनिया में;
सागर तरने वाला जैसे कोई—
हो डूब गया छोटी-सी नदिया में;

थोड़ा संगीत सुबह का भी सुन ले—
सपनों की लोरी पर विश्वास न कर!

सबसे अधिक तुम्हीं रोओगे

आने पर मेरे बिजली-सी कौंधी सिर्फ़ तुम्हारे दृग में,
लगता है जाने पर मेरे, सबसे अधिक तुम्हीं रोओगे !

मैं आया तो चारण-जैसा
गाने लगा तुम्हारा आंगन;
हँसता द्वार, चहकती ड्योढ़ी
तुम चुपचाप खड़े किस कारण ?

मुझको द्वारे तक पहुँचाने सब तो आए, तुम्हीं न आए,
लगता है एकाकी पथ पर मेरे साथ तुम्हीं होओगे !

मौन तुम्हारा प्रश्न-चिह्न है,
पूछ रहे शायद कैसा हूँ ?
कुछ-कुछ चातक से मिलता हूँ—
कुछ-कुछ बादल के जैसा हूँ;

मेरा गीत सुना सब जागे, तुमको जैसे नींद आ गई,
लगता मौन प्रतीक्षा में तुम सारी रात नहीं सोओगे !

तुमने मुझे अदेखा करके
सम्बन्धों की बात खोल दी;
सुख के सूरज की आँखों में—
काली-काली रात घोल दी;

कल को यदि मेरे आँसू को मन्दिर में पड़ गई जरूरत—
लगता है आँचल को अपने सबसे अधिक तुम्हीं धोओगे !

परिचय से पहले ही, बोलो—
उलझे किस ताने-बाने में ?
तुम शायद पथ देख रहे थे,
मुझको देर हुई आने में;

जग भर ने आशीष पठाए तुमने कोई शब्द न भेजा,
लगता तुम मन की बगिया में गीतों का बिरवा बोओगे !

अहसान भूलाऊंगा कैसे

जिसने मरघट की दूरी कम कर दी,
उसका अहसान भुलाऊंगा कैसे ?

वह फूल हुआ या शूल हुआ कुछ भी
जो भी पथ में था मेरा साथी है,
गीतों के गंगाजल में मुख धोकर
हर काली रात सुबह बन जाती है;

जिसने मेरे दृग में गंगा भर दी,
उसका अहसान भुलाऊंगा कैसे ?

माना माटी का एक खिलौना हूं
लेकिन कुछ का मन तो बहलाया है,
आखिर इतना बेकार नहीं हूं मैं
जो कोई जग के काम न आया है;

जिसने मुझमे क्वांरी पीड़ा वर दी,
उसका अहसान भुलाऊंगा कैसे ?

मेरे जीवन के सूने आंगन में
जिसने दुख का मेहमान बसाया है,
वह मेरे लिए न ईश्वर से कम है
जिसने मेरा सुनसान घटाया है;

जिसने मेरे कर पर कविता धर दी,
उसका अहसान भुलाऊंगा कैसे?

जिसने मेरी हर एक शिकायत को
मूरत की भाँति सदा चुपचाप सहा,
यह भी कोई साधारण बात नहीं
इतना सुनकर जो कुछ भी नहीं कहा;

जिसने पत्थर की आंख नरम कर दी,
उसका अहसान भुलाऊंगा कैसे?

जैसे कोई बनजारा लुट जाए

जैसे कोई बनजारा लुट जाए
ऐसा खोया-खोया है मेरा मन।

मेरे मन की सुनसान नगरिया में
अब उन्मादों की भीड़ नहीं जुड़ती,
यह जीवन ऐसे तट पर ठहरा है
कोई नैया जिस ओर नहीं मुड़ती;

धरती का आँगन गीला-गीला है
जैसे वर्षों रोया है मेरा मन!

उसकी खुशियों की माँग सजाता हूँ
जिसने मेरा उल्लास चुराया है,
ये गीत उसी के कारण लिखता हूँ
जिसने मुझको रोना सिखलाया है;

जीवन भर अब न कभी मैला होगा
दुख ने ऐसा धोया है मेरा मन!

उड़ना था स्वप्न विहंगम ही तो थे
लेकिन मैं उनका मोह न छोड़ूंगा,
मेरे मन का जिस-जिससे नाता है
मर जाऊंगा सम्बन्ध न तोड़ूंगा;

ऐसे कोलाहल में भी जो चुप है
कैसा बेसुध सोया है मेरा मन!

दुनिया से मन ऐसा घबराता है
अब आँख मिलाते भी भय खाता है
इसकी कोई ऐसी मजबूरी है
मैं कुछ कहता हूं, यह कुछ गाता है;

सच कह दूं तो अब तक मेरे तन ने
बस भार समझ ढोया है मेरा मन!

भयभीत उसी लोचन के जल से हूँ

मैं शोर मचाने वाली आँधी से भयभीत नहीं,
जो मौन बने बैठे उन तूफ़ानों से डरता हूँ।
निश्चित धरा के कोलाहल से हूँ,
निर्भीक बिजलियों की पायल से हूँ,
जिसने न शिकायत मेरी मुझसे की
भयभीत उसी लोचन के जल से हूँ;
मालूम तुम्हें जो उस कमज़ोरी से भयभीत नहीं,
जो ज्ञात नहीं उन अपने अरमानों से डरता हूँ।
चिन्ता न विरोधों की इतनी करता,
बाधा के पग पर शीश नहीं धरता,
जो मेरे हैं बिलकुल न पराये हैं
उन हमदर्दों से किंतु बहुत डरता,
मैं साफ दिखाई देते शूलों से भयभीत नहीं,
पर फूलों की उत्कंठित मुसकानों से डरता हूँ।
जब विश्व पिलाता है विष पीता हूँ,
जब मर जाता तब ज्यादा जीता हूँ,
तुम जब मुझको रस का पनघट कहते
तब लगता है जैसे घट रीता हूँ;
जो पास खड़े मदिरालय में उनसे भयभीत नहीं,
जो दूर बहुत बैठे उन अनजानों से डरता हूँ।

जब मिलेगी रोशनी मुझसे मिलेगी

इस सदन में मैं अकेला ही दिया हूँ;
मत बुझाओ !
जब मिलेगी, रोशनी मुझसे मिलेगी !!

पाँव तो मेरे थकन ने छील डाले
अब विचारों के सहारे चल रहा हूँ,
आँसुओं से जन्म दे-देकर हँसी को
एक मन्दिर के दिये-सा जल रहा हूँ;
मैं जहाँ धर दूं कदम, वह राजपथ है;
मत मिटाओ—
पाँव मेरे, देखकर दुनिया चलेगी !!

बेबसी, मेरे अधर इतने न खोलो
जो कि अपना मोल बतलाता फिरूँ मैं,
इस कदर नफ़रत न बरसाओ नयन से
प्यार को हर गाँव दफ़नाता फिरूँ मैं;

एक अंगारा गरम मैं ही बचा हूँ;
मत बुझाओ !
जब जलेगी, आरती मुझसे जलेगी !!

जी रहे हो जिस कला का नाम लेकर
कुछ पता भी है कि वह कैसे बची है,
सभ्यता की जिस अटारी पर खड़े हो
वह हमीं बदनाम लोगों ने रची है;
मैं बहारों का अकेला वंशधर हूँ,
मत सुखाओ !
मैं खिलूंगा, तब नई बगिया खिलेगी !!

शाम ने सबके मुखों पर रात मल दी
मैं जला हूँ, तो सुबह लाकर बुझूंगा,
जिन्दगी सारी गुनाहों में बिताकर
जब मरूंगा, देवता बनकर पुजूंगा;
आंसुओं को देखकर मेरी हँसी तुम—
मत उड़ाओ !
मैं न रोऊँ, तो शिला कैसे गलेगी !!

द्वार तक भी क्या न पहुंचाने चलोगे

मैं चला आया निमन्त्रण पर तुम्हारे—
द्वार तक भी क्या न पहुँचाने चलोगे ?

यों उदासी से न मुझको और मारो
मुश्किलें मेरी रुलाने को न कम थीं,
तुम बुलाओ यह ज़रूरत ही कहाँ थी—
ये घटाएँ ही बुलाने को न कम थीं;
जब उढ़ाया है उमंगों को कफ़न, तो—
क्या न अन्तिम मर्सिया गाने चलोगे ?

जब बहारों ने नयन तक ले लिए हैं
फिर मुझे डर है न पतझर से, न तुमसे
एक भी तिनका बचाने को न बाकी—
अब मुझे डर है बवंडर से, न तुमसे;
दर्द जब मेरा कहीं नीलाम होगा—
क्या न उसका मोल बतलाने चलोगे ?

घिर रहा है सब दिशाओं में अँधेरा
रोशनी का खून कर डाला किसी ने,
लाश फूलों की तड़पती है चमन में—
विष हवा में आज भर डाला किसी ने;
साथ पतझर के ज़माने की तरह क्या—
लाश फूलों की न दफ़नाने चलोगे ?

अब नहीं आज़ाद होंठों की तड़प भी
गीत लिखता मैं, मुहर आँसू लगाते,
साँस हर गिरवी धरी है मौत के घर—
नींद आती है कि लोचन चौंक जाते;
बिक गई है अब चिराग़ों की चमक भी—
क्या जगत को यह न समझाने चलोगे ?

यह सिन्दूर लगाया मैंने

चाहे तुम भूले-भटके ही मेरे द्वार चली आई हो,
लगता जैसे स्वयं निमंत्रण देकर तुम्हें बुलाया मैंने।

तुम दोहराई गई विनय हो,
मैं अनगाए विहाग-सा हूँ;
तुम हो मंगल-सूत्र किसी का,
मैं विधवा के सुहाग-सा हूँ;

चाहे पलक तुम्हारे मेरे ही आँसू से भीग गए हों,
लेकिन लगता कई जनम तक जैसे तुम्हें रुलाया मैंने।

मेरे द्वार अचानक कैसे—
पाँव तुम्हारा रुक जाता है;
शायद मेरा और तुम्हारा
पहले का कोई नाता है;

जाने तुम किसके हाथों से काजल अंजवा कर आई हो,
लेकिन लगता माँग तुम्हारी यह सिन्दूर लगाया मैंने।

थोड़े अनुभव दान दे दिए
किन्तु सरलता सब ले ली है,
मुझसे आँख-मिचौनी आखिर
मेरी पूजा तक खेली है;

चाहे फूल किसी ने चुनकर गूँथ दिया हो इस जूड़े में,
लेकिन लगता है गोतों से जैसे इसे खिलाया मैंने।

तुमने पलकों में सावन घोल दिया

फागुन को है खुद अब तक हैरानी,
जाने तुमको क्या सूझी शैतानी;
यह भी कोई वर्षा का मौसम था—
तुमने पलकों में सावन घोल दिया !

जैसे-तैसे पथ की बाधाओं से,
बच कर आया मन्दिर के द्वारे पर;
लेकिन आँगन ने ठुकराया मुझको,
दुश्मन दुनिया के एक इशारे पर;

जीवन कोलाहल से भर डाला है,
तुमने बिना-सोचे क्या कर डाला है;
दुख के पग में बेड़ी पहनानी थी—
उल्टे हाथों का बन्धन खोल दिया !

जी में आता सूरज की आँखों में,
भोले-भोले से दो आँसू भर दूँ;
मन करता है चन्दा के पाँव लगूँ,
माथे पर मन का राजमुकुट धर दूँ;

जाने बुन कैसा जाल दिया तुमने,
मुझको मुश्किल में डाल दिया तुमने;
तुमको दुनिया का कर्ज़ चुकाना था—
बदले में मेरा जीवन तोल दिया!

सुख तो कोई दुर्लभ-सी वस्तु नहीं,
जब चाहो आदर के बदले ले लो;
दुनिया को अपनी पावनता दे दो,
फिर चाहो जिस सिंहासन से खेलो;

जीवन आँधी बनकर झकझोर दिया,
मुझको तुमने काजल में बोर दिया,
मैंने तुमको बे-मौसम फूल दिए—
तुमने जाकर पतझर को बोल दिया!
मेरी आँखों में सावन घोल दिया!

उस लहर के हाथ का कंगन बनूंगा

जो समन्दर की सतह पर तैरती है बाल खोले—
अब उसी बाग़ी लहर के हाथ का कंगन बनूंगा।

मैं रहूं प्यासा यही काफ़ी नहीं है,
होंठ भी मेरे किरन से छील डालो,
फिर उदासी की गुफा में बन्द कर दो—
माफ़ कर दूंगा तुम्हें संसार वालो;

लाज को बे-बात जिसकी दे गया गाली स्वयंवर—
मैं उसी घायल दुल्हन की बे-जुबां तड़पन बनूंगा।

बिजलियों की बे-रहम चेतावनी पर
मुस्कुरा भर दूं अगर, वे रो पड़ेंगी,
है नियम इनका उजाले से लड़ेंगी—
जो अंधेरा हो उसे सिर पर जड़ेंगी;

जो अनल का पुत्र होकर जन्म देता है दिये को—
मैं उसी तपसी अंगारे का दहकता तन बनूंगा।

शूल ने ऐसे सुगंधित बोल बोले,
फूल का धोखा मुझे ही हो गया था;
लौट आया राजपथ पर, कुछ समय को—
मैं किसी बुज़दिल गली में खो गया था;

मान ली हो देवता ने आरती जिसकी अपावन—
मैं उसी भावुक पुजारी का पतित पूजन बनूंगा।

आज मैं सुख के लिए चिन्तित नहीं हूं,
दर्द तो यह है कि दुख घटने लगा है,
चल रहा था जिस उदासी के सहारे—
हाथ उसका हाथ से छुटने लगा है;

तोड़कर सारे नियम जो कल्पना को पूजती है—
मैं उसी चंचल जवानी का सरल बचपन बनूंगा।

जो सम्बन्ध स्वयंवर का सिन्दूर से

प्रश्न किया है मेरे मन के मीत ने—
मेरा और तुम्हारा क्या सम्बन्ध है?

वैसे तो सम्बन्ध कहा जाता नहीं,
व्यक्त अगर हो जाए तो नाता नहीं,
किन्तु सुनो—लोचन को ढांप दुकूल से,
जो सम्बन्ध सुरभि का होता फूल से;
मेरा और तुम्हारा वह सम्बन्ध है!

मेरा जन्म दिवस ही जग का जन्म है,
मेरे अन्त दिवस पर दुनिया खत्म है,
आज बताता हूं तुमको ईमान से,
जो सम्बन्ध कला का है इन्सान से;
मेरा और तुम्हारा वह सम्बन्ध है!

मैं न किसी की राजनीति का दांव हूं,
दे दो जिसको दान न ऐसा गांव हूं,
झूठ कहूंगा तो कहना किस काम का,
जो सम्बन्ध प्रगति का और विराम का;
मेरा और तुम्हारा वह सम्बन्ध है!

करता हूं मैं प्यार, सुनाता गीत हूं,
जीवन मेरा नाम, सृजन का मीत हूं,
और निकट आ जाओ सुनो न दूर से
जो सम्बन्ध स्वयंवर का सिन्दूर से ;
मेरा और तुम्हारा वह सम्बन्ध है !

मैं रंगोन उमंगों का समुदाय हूं,
सतरंगी गीतों का एक निकाय हूं,
और कहूँ क्या तुम हो रहे उदास-से,
जो सम्बन्ध समर्पण का विश्वास से,
मेरा और तुम्हारा वह सम्बन्ध है !

कली को न आया अभी मुस्कुराना

कहो जागरण से तनिक सांस ले ले !
अभी स्वप्न मेरा अधूरा-अधूरा।
लकीरें बनी हैं न तस्वीर पूरी
अभी ध्यान है, साधना है अधूरी
अभी कल्पना का हुआ है उदय ही
अभी साथ मेरे रहा है मलय ही
मुझे देवता मत पुरस्कार देना !
अभी यत्न मेरा अधूरा - अधूरा।
अभी चांद का रथ हुआ है रवाना
कली को न आया अभी मुस्कुराना
अभी तारकों पर उदासी न छाई
दिये ने न मांगी अभी तक विदाई
प्रभाती न गाओ, सुबह मत जगाओ,
अभी प्रश्न मेरा अधूरा - अधूरा।
किरण फूल के कुंतलों को खिलाए
पवन डाल की पायलों को बजाए
चमन को मधुप जब मुरलिया सुनाए
तुम्हारी मुझे जब कभी याद आए
तभी द्वार आकर तभी लौट जाना,
हृदय भग्न मेरा अधूरा - अधूरा।

अभी आग है आरती कब बनी है
अभी भावना भारती कब बनी है
मुखर प्रार्थना किन्तु पूजन नहीं है
निवेदन बहुत है समर्पण नहीं है
अभी से कसौटी न मुझको चढ़ाओ,
खरा स्वर्ण मेरा अधूरा-अधूरा।

खिलौना : एक उद्‌बोधन

मेरे पीछे इसीलिए तो धोकर हाथ पड़ी है दुनिया,
मैंने किसी नुमाइश-घर में सजने से इन्कार कर दिया।
विनती करती, हुक्म चलाती,
रोती, फिर हंसती, फिर गाती;
दुनिया मुझ भोले को छलने,
क्या-क्या रूप बदलकर आती;
मन्दिर ने बस इसीलिए तो मेरी पूजा ठुकरा दी है,
मैंने सिंहासन के हाथों पुजने से इन्कार कर दिया।
चाहा मन की बाल-अभागिन
पीड़ा के फेरे फिर जाएं;
उठकर रोज़ सवेरे मैंने
देखीं हाथों की रेखाएं;
जो भी दंड मिलेगा कम है, मैं उस मुरली का गुंजन हूं,
जिसने जग के आदेशों पर बजने से इन्कार कर दिया।
मन का घाव हरा रखने को,
अनचाहा हंसना पड़ता है।
दीपक की खातिर अंगारा,
अधरों में कसना पड़ता है;
आंखों को रोते रहने का खुद मैंने अधिकार दिया है,
सच को मैंने सुख की खातिर तजने से इन्कार कर दिया।

अर्पित हो जाने की तृष्णा
जागी, मैं हो गया कलंकित;
कंठा ने मेरी निन्दाएँ
कर दीं हर मन्दिर पर अंकित;
मैं वह सतवन्ती श्रद्धा के खंडहर का बीमार दिया हूं,
जिसने आँधी के चढ़ने पर बुझने से इन्कार कर दिया।

द्वार पर शहनाइयाँ बजवा रहा हूँ

बज रहे हैं मृत्यु के दो घूँघरू जो,
अनसुना उनको बनाने के लिए ही—
द्वार पर शहनाइयाँ बजवा रहा हूँ;
ब्याह का उत्सव नहीं, परिणय नहीं है।

बोलना ही धूल का जीवन कहाता,
और उसका मौन हो जाना मरण है;
मृत्यु की भाषा कठिन होती बहुत ही,
ज़िन्दगी उसका सरलतम व्याकरण है;

घिर रहा है जो अमावस का अँधेरा,
अनदिखा उसको बनाने के लिए ही—
आँख पर कुछ रोशनी पुतवा रहा हूं;
यह उजाले को तिमिर पर जय नहीं है।

माँग के उतरे हुए सिन्दूर-सा हूं,
वृक्ष से टूटा हुआ हूं पात जैसा;
डाल से बिछुड़ा हुआ कोई सुमन हूं
हाथ से छूटा हुआ हूं हाथ जैसा;

कर चुका हूं जो हज़ारों ग़लतियां मैं,
अनहुई उनको बनाने के लिए ही—
ये क्षमा की झालरें सजवा रहा हूं;
ज़िन्दगी का आख़िरी निर्णय नहीं है।

तुम कहीं आए न हो यह जानकर ही,
हर अतिथि की आरती मैंने उतारी,
पूछने को स्वर्ग का कोई ठिकाना,
मैं रहा करता नरक की चाटुकारी;

खोजता फिरता जिसे संसार भर में,
उस अपरिचित को बुलाने के लिए ही-
मैं नुमाइश-सी ज़रा लगवा रहा हूं;
यह किसी त्योहार का परिचय नहीं है।

सुख किसी क़ैदी विहंगम की तरह था,
छूटकर जो पींजरे से उड़ गया है;
दुख किसी निर्लज्ज कामी की तरह है
जो कि पीछे हाथ धोकर पड़ गया है;

जो न मरहम से भरा, अब तक हरा है
घाव वह अपना छिपाने के लिए ही—
देह पर उबटन ज़रा मलवा रहा हूं;
यह किसी उल्लास का अभिनय नहीं है।

तुमसे एक बात कहता हूं

तुमसे एक बात कहता हूं—गोकुल की वाचाल गोपियो !
मधुकर की परवाह छोड़ दो, मधुवन का आचरण सँभालो !

सागर में क्यों है बेचैनी,
कुछ बूंदों के असहयोग पर;
संख्या क्यों बीमार हो गई,
एक इकाई के वियोग पर;

तुमसे एक विनय करता हूं—बुरा न मानो यशोधराओ !
बाट न देखो बैठ द्वार पर घर का वातावरण सँभालो !

माना वशीकरण में भीगी
वाणी होती है विलाप की,
पर आँसू से अधिक सुरीली
होती है आवाज़ पाप की;

तुमसे चार शब्द कहता हूं—सुनतो भो हो शकुन्तलाओ !
कुछ तन की भाषा को बदलो, कुछ मन का व्याकरण सँभालो !

तन के पथ में पलक बिछाना,
मन के अवगुण का निशान है;
पारस पूज रहा लोहे को,
कहने को ऊँची दुकान है;

तुमसे एक निवेदन मेरा—सुन लो जग भर की रम्भाओ !
फिसलन की ग़लतियाँ न खोजो, अपने डगमग चरण सँभालो !

अनुनय भरा समर्पण ही जब
दुश्मन लगता है सुहाग को,
आँचल के भीगे धागों में
बाँधोगी कैसे विराग को;
तुमसे एक प्रार्थना मेरी—सुन लो कोटि-कोटि सीताओ!
करो नहीं निर्वसन सत्य को, भ्रम वाला आवरण सँभालो!
तुमको कैसे प्यास डस गई,
तुम तो थीं गंगा की धारा;
जीत गई क्यों विकल वासना,
हार गया क्यों प्यार तुम्हारा;
तुमको एक मन्त्र देता हूं—धर कर ध्यान सुनो श्रद्धाओ!
पुजने का अभिमान छोड़ दो, पूजा के उपकरण सँभालो!

गीत जग-भर के दुखों की आत्मा है

अश्रु अपनी ही व्यथा का निर्वसन तन,
गीत जग-भर के दुखों की आत्मा है।
कुछ नयन इतने दुखी, रोया न जाता,
चाँदनी की गोद में सोया न जाता;
उन सभी का दर्द जिसने लिख दिया है—
वह समय की धार से धोया न जाता;
ज्ञान सबकी व्यक्तिवादी चेतना है,
प्यार हर इंसान का परमात्मा है।
इसलिए जलता न दीपक, कुछ मिलेगा,
और उसका वंश दुनिया में चलेगा;
वह उसी वातावरण की भूमिका जो—
इसलिए रोया, किसी को सुख मिलेगा;
धुल गई है भूमि की सारी उदासी—
क्योंकि भावुक घन अभी रोकर थमा है।
सूर्य बसता है न चन्दन के सदन में,
विश्व-भर के वास्ते तपता अगन में;
गंध देता है उसे भी, तोड़ ले जो—
मोह अपना कुछ नहीं होता सुमन में;
सत्य क़ातिल को शरण देता नहीं है,
भावना की राजभाषा ही क्षमा है।

बूंद ने अपनी नहीं दुनिया बसाई,
जब सजाई सिन्धु की नगरी सजाई;
इस हिमालय को बड़प्पन तब मिला है—
भूमि को जब आँख से गंगा पिलाई;
इस जगत् में सब किसी के प्रिय अलग हैं,
किन्तु रचना हर किसी की प्रियतमा है।

आँख से आँसू पिला दो

आज गंगाजल-भरे कंचन-कलश का क्या करूँगा,
हो सके तो तुम मुझे बस आँख से आँसू पिला दो,

ढल गई है रात होने को उदय है,
अब न कुछ सुनने-सुनाने का समय है;
दो मुझे आशीष, दूरी को सहूँ मैं—
और इस तन के बिना भी कुछ रहूं मैं;

अब धधकते यज्ञ की पावन अगन का क्या करूंगा,
हो सके तो तुम दिये को गीत गा-गाकर जला दो!

पाप बचपन ने न जाने क्या किया है,
शाप यौवन का किसी ने दे दिया है,
इसलिए बेचैन-से मिलते सभी हैं—
अनमने-से राह पर चलते सभी हैं;

अब तुम्हारी पुतलियों में बन्द होकर क्या करूँगा,
हो सके तो तुम मुझे दुख के समन्दर में मिला दो!

गान लो कल की मुझे चिन्ता नहीं है,
मृत्यु के पल की मुझे चिन्ता नहीं है;
आँसुओं को आँख में मेरी सजा दो—
सौ विषादों का तिलक मुझको लगा दो;

अब तुम्हारे स्नेह का अनुदान लेकर क्या करूँगा,
हो सके तो तुम घृणा को प्यार के आँसू रुला दो!

हाँ, बचाने के लिए ही मान मन का,
दे दिया संसार को बलिदान तन का;
इस अधूरी ज़िन्दगी को क्या जिऊं मैं—
बे-नशे वाली सुरा को क्या पिऊं मैं;
अब तुम्हारे इस समर्पण का बताओ क्या करूंगा,
हो सके तो कामना को लोरियां गाकर सुला दो!

उसकी बात नहीं टालूंगा

मन्दिर में सौगन्ध दिला लो,
मुझसे गंगाजल उठवा लो,
मौसम ने अनुरोध किया तो
उसकी बात नहीं टालूंगा।

मेरी आंख डुबा देने को
एक उदास नज़र काफ़ी है,
मेरी नींद चुरा लेने को
शहनाई का स्वर काफ़ी है;
ओ मरे कमज़ोर इरादों !
जाकर दुनिया को समझा दो,
मैं जब जिस तरु में चाहूँगा
सपनों के झूले डालूंगा।

मन का एक झरोखा खोलो
मेरी बात सुनाई देगी,
दुविधा का आवरण हटा दो
तब हर वस्तु दिखाई देगी;
मन को जी-भरकर समझा लो,
चाहे जो मुझसे कहला लो;
अधरों पर पहरे बिठवा दो,
मैं जब चाहूंगा गा लूंगा।

आओ, आज खरीदो मुझको
मैं खुद को नीलाम करूंगा,
थोड़ा स्नेह मुझे दो उस पर
मैं धरती की नींव धरूंगा;
आँसू से क्या रुक पाऊंगा,
जब मन चाहेगा जाऊंगा,
सुख से बोलो—नाम न पूछो
जब चाहूंगा बुलवा लूंगा।

मेरा जन्म अकारथ कर दो
विष में नहला दो जीवन को,
लेकिन दाग़ न लगने पाए
मन के उजले साफ वसन को;
तुम तूफ़ानों को मत झेलो,
मेरे पुण्यों का फल ले लो,
मेरा क्या है, मैं आंधी से
भी अपना मन बहला लूंगा।

अर्चना को क्या हुआ है

हर मधुर वरदान को ठुकरा रही है,
आज मेरी अर्चना को क्या हुआ है ?

कल्पना ने आंख के जल से भिगोया
भावना ने हाथ से मेंहदी रचाई
हो गया मन का स्वयंवर तो प्रथम ही
तब हुई अनजान आंखों की सगाई
अब मिलन के नाम से शर्मा रही है,
आज मेरी कामना को क्या हुआ है ?

आंख में काजल लगाए चांद जिसको
तारकों के गाँव घर-घर खोजता है
स्नेह के दुर्लभ सुमन की गंध-सा जो
और किरणों को नहीं जिसका पता है
उस अपरिचित के लिए अकुला रही है,
आज मेरी भावना को क्या हुआ है ?

कंठ गीतों के बुलाकर थक गए हैं
किन्तु गाने को उन्हें आया न कोई
और जिसको रोज़ दुर्गम घाटियों में
खोजते ही खोजते हर साँस खोई
कर उसी के सामने फैला रही है,
आज मेरी याचना को क्या हुआ है ?

तब बताया नाम जिसने स्वप्न अपना
फिर लगा कहने कि मैं तो कामना हूं
कल दिया उत्तर कि मुझको प्यार कहते
आज कहता है कि मैं तो वेदना हूं
उस छलो के ही चरण सहला रही है,
आज मेरी साधना को क्या हुआ है ?

उसका घर पहचाना-सा लगता है

अनजान जगत के इस कोलाहल में
कोई स्वर पहचाना-सा लगता है!
परिचित को छोड़ अपरिचित नगरी में
जब मुझको मेरा मन ले जाता है,
अनजान डगर पर देश विराने को
तब सत्य मुझे ऐसा भरमाता है;
हर सूरत कुछ परिचित-सी लगती है,
हर अन्तर पहचाना-सा लगता है!
यह औरों का कैसा अज्ञात रुदन
जो मेरी हंसती आंख भिगोता है?
मेरी निजता ने मुझसे प्रश्न किया,
क्या बात हुई है—तू क्यों रोता है?
मैं जान अपरिचित जिसके द्वार गया,
उसका घर पहचाना-सा लगता है!
उपवन से रूठ कभी जब हरियाली
जाती है और किसी वीराने में,
उपवन की निष्ठुरता को दोहराती
बैठी सूने खँडहर अनजाने में;
तब हरियाली से कहता उसका मन,
कुछ खंडहर पहचाना-सा लगता है!

अनजान जगत अनदेखे उपवन मे
अनभिज्ञ सभी से और बिना बोले,
ले जन्म अपरिचित भ्रमरों के दल में
नवजात कली ने अपने दृग खोले;
यह देख कली को घोर अचम्भा था,
हर मधुकर पहचाना-सा लगता है!

जब आ जाता कुछ उड़ना विहगों के
उन नन्हे-नन्हे राजकुमारों को,
तब कौतूहल कहता—उड़कर छू लो
अनजान क्षितिज, नभ की मीनारों को;
कुछ दूर उड़े तो पंख लगे कहने—
कुछ अम्बर पहचाना-सा लगता है!

भटकी-भटकी पानी की एक लहर
चलती-फिरती कितने उद्यानों से,
आती है दूर समन्दर के तट पर
बचकर पहचाने रेगिस्तानों से;
पर जल को देख उसे आभास हुआ,
कुछ सागर पहचाना-सा लगता है!

सन्देश-गीत

ओ अशरीरी पवन झकोरो, उस तक मेरा स्वर पहुंचा दो,
रेशम के समझाने पर भी, जिसको नींद न आई होगी।

काफ़ी रात गई, दिन डूबा,
काफ़ी रात अभी बाक़ी है;
जीवन ने दुख, दुख ने दी जो—
वह सौग़ात अभी बाक़ी है;

मेरी खंडित मुसकानों को, उसकी पलकों पर बिखरा दो,
चांदी के बहलाने पर भी, आंख न जो मुसकाई होगी।

सुधि का दीप जला लेने से,
दुख आपस में बंट जाता है;
रोशनदान खुले रखने से—
कुछ सूनापन घट जाता है;

मेरे पूजन की रोली को उसके सिरहाने रख देना,
जिसकी मांग न मर्यादा से समझौता कर पाई होगी।

बेसुध होना नींद नहीं है,
नींद सुखद सपने लाती है;
यों तो थोड़ी-बहुत उदासी—
आंसू से भी धुल जाती है;

मेरे इन भावुक गीतों से उसका हर्ष मुखर कर देना,
सुख के अभिनन्दन में जिसने दुख की कजली गाई होगी।

जीता हूं मैं इसीलिए तो,
कोई सपना पांव चलेगा;
कब का जाग उठा कोलाहल—
जाने सूरज कब निकलेगा ?

मेरी गत-आगत खुशियों को उस पर न्योछावर कर देना,
जिसने अभी-अभी अलसाकर ली व्याकुल अंगड़ाई होगी।

अन्तिम गीत

जितने गीत रचे हैं मैंने
इस लम्बी बीमार उमर में
उन सबको बेचूं तो शायद
आधा कफ़न मुझे मिल जाए।

सोती रही सुबह बे-खटके
मैंने घर-घर अलख जगाई,
शंकाकुल भय की घाटी में
सम्बन्धों की फ़सल उगाई;

मैंने पलकों से चुन-चूनकर
मेरा तप यदि सुफल हुआ तो
जग के पग से शूल निकाले
शायद चुभन मुझे मिल जाए।

हंसती शाम जहां उतरी हो
ऐसा कोई द्वार बता दो,
मुझको उस सौभाग्यवान के
कम से कम दर्शन करवा दो;

मैंने हर घायल के तन पर
चन्दन का अनुलेप किया है
मांगूं तो शायद जलने को
थोड़ी अगन मुझे मिल जाए।

सब सोए हैं, भेद हृदय का
अब तो जलते दीपक खोलो,
तुमसे यदि पूछूं जीवन की
क्या दोगे परिभाषा, बोलो ?

दुनिया भर को राह दिखाकर
मैं जिस रोज़ भटक जाऊँगा
मन्दिर तक पहुँचाने वाला
शायद पवन मुझे मिल जाए।

मैं न जन्म लेता तो शायद
रह जातीं विपदाएं क्वांरी,
मुझको याद नहीं है मैंने
सोकर कोई रात गुज़ारी;

मुझको अपनी निष्ठाओं का
कुछ तो फल मिलना है आखिर
मेरे बाद बहुत संभव है
सारी धरन मुझे मिल जाए।

गीत यह मेरा नहीं है

गीत जिस में आ रही दुर्गन्ध कुछ-कुछ याचना की
लिख गया होगा कभी, यह स्वर मगर मेरा नहीं है
प्यार, आंसू, मन-सृजन को छोड़कर मैं
जो झुका तो देवता के ही चरण में।
मैं पराजित क्योंकि इतना कह न पाया
जी रहा हूं मैं तुम्हारी ही शरण में
सांकलें खुद ही खरीदीं और ताले भी नये हैं
रह रहा हूं कुछ समय से घर मगर मेरा नहीं है।
आप लेखक या सुकवि कितने बड़े हों
गा रहे हैं आप लेकिन दर्द मेरा
स्वप्न जिसका शव उठाये घूमता हूँ
काश ! मिल जाता किसी मन में बसेरा
जो तुम्हारे पांव पर लेटा हुआ-सा दिख रहा है
जो कि मिलता तो बहुत है, सर मगर मेरा नहीं है।
गीत मेरा शौक भर, पेशा नहीं है
गीत से मैं आदमी को खोजता हूं
हर किसी की आंख में मैं झाँकता हूं
जो विरल है उस नमी को खोजता हूं
वह तुम्हारा पत्र तो मुझको कभी का मिल गया था
भूख ने जो भी लिखा उत्तर मगर मेरा नहीं है।

कीमत भी देता हूँ

पूजा से उठते ही विनती यह करता हूं
मेरे सब पुण्यों का फल तुमको मिल जाए।

यम से तो जीत गया जीवन से हारा हूं
हाथों में इकतारा लगता बंजारा हूं
उठते ही बिस्तर से चिट्ठी यह लिखता हूं
मुझमें जो कुछ भी है कल तुमको मिल जाए।

इतना तो कर दो मैं सागर को तर जाऊं
तुमको भी ज्ञात न हो चुपके से मर जाऊं
सूरज के छिपते ही मन में दोहराता हूं
आंसू बस मेरे हैं जल तुमको मिल जाए।

जो मन को भाता है, उसको चुन लेता हूं
पर इसकी पूरी कीमत भी देता हूं
मेरी दमयन्ती मैं हर बाज़ी हार गया
मुमकिन है फिर कोई नल तुमको मिल जाए।

भाल पर रख दी हथेली

आख़िरी वेला सुबह देखूं न देखूं
आज मेरे भाल पर रख दो हथेली !

ज़िन्दगी ने हार जिससे मान ली हो
मौत से वह आदमी कैसे डरेगा
काल को भी यह पता है यह सिपाही
जब मरेगा हाथ से अपने मरेगा
इस विदाई के समय क्या चाहिए जब
पास तुम हो और महकी है चमेली !

ज़िन्दगी की हर चुनौती से लड़ा हूं
पांव पर अपने सहारे बिन खड़ा हूं
आज तो दीवार तक गाने लगी है
गल रहा है मौन यह कैसी पहेली !

जो किया मैंने मुझे उसका न ग़म है
तोड़ना ज़ंजीर तो मेरा नियम है
बीच महलों के उठाए सर खड़ी है
ज़िन्दगी भी एक टूटी-सी हवेली !

आओ, गुलाब बोएं

छोड़ो कि कौन हममें कितना विशेष घायल
आओ बबूल वन से मिलकर गुलाब बोएं !

अब नौबतें यहाँ तक चुपचाप आ चुकी हैं
नहरें तबील चुप हैं चौपाइयां दुखी हैं
आओ कि ज़िन्दगी को भूगोल से निकालें
तब प्यार में निचोड़ें फिर गंध में भिगोएं

गाओ कि ताज़गी का स्वर डूबने लगा है
वीरान गुम्बदों का जी ऊबने लगा है
ठहरो कि आदमी को फिर एक बार खोजें
तब हम निराश होकर फिर बार-बार रोएं!

तन को निखारना तो जल के समीप जाओ
मन को कमल बनाना तो दर्द में नहाओ
देखो कि रोशनी का सारा शरीर पंकिल
आओ सरस्वती में इसका कुरूप धोएं !

ये मेरी आँखें हैं

सपनो कुछ धीरे-धीरे पांव धरो
चीलों की तरह उड़ानें नहीं भरो
आकाश नहीं, ये मेरी आंखें हैं!

खाली घावों में पीड़ा भरने दो
यादों में कुछ ताज़गी उभरने दो
आंसू में कुछ भारीपन आने दो
कुछ बदनामी का रंग निखरने दो

महको चाहे शूलों की तरह गड़ो
तेरी इनमें पुस्तक-सी नहीं पढ़ो
इतिहास नहीं! ये मेरी आंखें है।

दृग में रहना चाहोगे रख लूंगा
चुभने की कीमत मांगोगे दूंगा
ताजे जल से मल-मल नहलाऊँगा
तुमसे कोई प्रतिकार न चाहूंगा

दुनिया है इसको देखो कुछ विचरो
चिन्ता तुम चलती-फिरती रहा करो
आवास नहीं! ये मेरी आंखें हैं।

आओ हम अंधियारे में खो जाएं
वर्जित घाटी में जाकर सो जाएं
रहते-रहते थक गए देवता हम
पलभर के लिए आदमी हो जाएं

क्या देख रहे जाने क्या आंक रहे
चुपके-चुपके जाने क्या झांक रहे
वातास नहीं, ये मेरी आंखें हैं।

दर्द का अनुवाद कब करते

न अपनी ही कथा हमसे अभी तक हो सकी पूरी
तुम्हारे दर्द का अनुवाद कब करते
अभी हम और कुछ दिन
घाव अपने पाल सकते थे
मगर हम दर्द के कब तक
तकाज़े टाल सकते थे
हमें घेरे रहा वाचाल बातूनी अकेलापन
तुम्हारी भीड़ से संवाद कब करते
बड़े दिलचस्प चौराहे
मगर मन ऊब जाता है
यहां हर रास्ता बे-मन
किसी में डूब जाता है
रहे हम जूझते सैलाब से अस्तित्व की ख़ातिर
तुम्हारी बस्तियां आबाद कब करते
भला क्या फ़र्क़ है इस
शाम में या उस सवेरे में
यहां हर रोशनी की
उम्र कटती है अंधेरे में
झुलसते ही रहे हम दोस्ती के इन अलावों में
तुम्हारी बेरुखी की याद कब करते

मन दिया है दो जगह

ज़िन्दगी में सिर झुकाया दो जगह
सोते हुए सौन्दर्य को, जागे हुए इन्सान को।
वासना मेरी अधिक कुछ भी नहीं
सिर्फ निंदियारे कमल से मोह है
दुश्मनी मेरी किसी से भी नहीं
हां, अंधेरे से तनिक-सा द्रोह है
गीत जो भर कर सुनाया दो जगह
वाचाल से उद्यान को, खामोश रेगिस्तान को।
देखने को स्वप्न देखे अनगिनत
याद दो का नाम ही लेकिन रहा
एक वह जो छोड़ गहरे में गया
एक वह जो साथ नौका-सा बहा
मन दिया है ज़िन्दगी में दो जगह
हारे हुए विश्वास को, लड़ते हुए ईमान को।
कुछ दिनों सुख की गली पहरा दिया
कुछ दिनों बंदी रहा संताप में
नाम का ही भेद है, अन्तर न कुछ
तृप्ति के सुख में, तृषा के ताप में
घाव अंतर का दिखाया दो जगह
जाते हुए तूफ़ान को, आते हुए सुनसान को।

और मैं क़ैद हूं

सिर्फ़ ताले, किवाड़े, सलाखें नहीं
एक दीवार तक भी नहीं है कहीं
एक ऐसी भयानक हवालात है
और मैं क़ैद हूं !

एक ही काम है जो मिला है यहाँ
मैं हवा को कभी गर्म होने न दूं
और सब छूट है एक ही शर्त है
जो कहूं आंसुओं में भिगोकर कहूं
रील में जिस तरह हो पिरोई हुई
दूर तक भीड़ है, भीड़ सोई हुई
प्रश्न जागे हुए गश्त पर रात है
और मैं क़ैद हूं !

एक भय है अजाना कि संदेह है
खिड़कियों की तरह प्राण-मन कांपता
कह रही झनझनाहट कि फैलो नहीं
वक्त गज़ से कदों को नहीं नापता
नालियां हर तरफ़ रास्ता ही नहीं
बस घुटन से घुटन की मुलाकात है
और मैं क़ैद हूं !

उतना ऋण काफी है

यंत्रों की स्वीकृतियां रहने दो, रहने दो
मिट्टी में बस जाऊं खुशबू बन काफी है।
पूरे के पूरे तुम छप जाओ कागज़ पर
मन पर दो अक्षर ही मुझको लिख लेने दो
मालाएं सबकी सब, ले लो दुकानों तक
मुट्ठी भर खुशबू पर मुझको बिक लेने दो
अभिनन्दन-विज्ञापन रहने दो, रहने दो
तुमसे जो स्नेह मिला उतना ऋण काफी है।
लगवा लो प्रतिमाएं युग के चौराहों पर
सदियों तक जीना है, मुझको क्या जल्दी है
चांदी के घट में जल जितना है पी जाओ
अमृत ही पीना है, मुझको क्या जल्दी है
कमरे में टंग जाऊं, रहने दो, रहने दो
रहना ही होगा तो केवल मन काफी है।
चित्रों के संग्रह में मुझको क्या लेना है
मेरा जब निश्चय है, दर्पण ही बनना है
जिसको बिन पहने मन गूंगा रह जाता है
बनना है मुझको वह कंगन ही बनना है
ग्रंथों में टिप्पणियां रहने दो, रहने दो
तुमने जब याद किया उतना ऋण काफी है।

बुझते दीप का आत्म-निवेदन

अपनी उम्र कर चुका पूरी
छूट गए सब काम अधूरे
मेरे अशुभ अनमने सिरजन
मुझको कभी क्षमा मत करना।

जीवन का अमृत निचोड़कर प्यासे यम को पिला दिया है
मैंने अपनी माँ के पुण्यों को मिट्टी में मिला दिया है,

मेरे रचनाकार, तुम्हारे
फूल अगर रह जांय अनचुने
ओ मेरे पद दलित आचमन
मुझको कभी क्षमा मत करना।

ले डूबेगा बीच भंवर में इसका मुझको नहीं ज्ञान था
अपने मन पर मुझको अपने भाई से ज्यादा गुमान था

अपने ही विश्वास घात से
मेरे सब संकल्प पराजित
ओ मेरे उदास घर—आंगन
मुझको कभी क्षमा मत करना।

ममता दृष्टि मांगती, यौवन मांग रहा शृंगार सलोना
बचपन मार-मार किलकारी मांग रहा है सुघर खिलौना

मैं कर्त्तव्य हीन, मैं कायर
जो बिक जाता मृत्यु के हाथों
मुझ पनघट के प्यासे बचपन
मुझको कभी क्षमा मत करना।

मौलिक सपने भटक रहे हैं

क्या संबोधन उचित रहेगा
मेरे समय, विशेषण क्या दूं ?
मौलिक सपने भटक रहे हैं
अनुकृतियों पर फूल चढ़ रहे।

घूम रहा निर्बाध अँधेरा
सूरजवाला मुकुट लगाए
भिक्षा मांग रहा उजियाला
आंगन-आंगन गीत सुनाए !
मेरे युग क्या बता सकेगा
क्या अपमान करूं मैं तेरा
नाम नहीं चल रहा सृजन का
अनुवादों के वंश बढ़ रहे।

यश के लिए आत्महत्या को—
तजकर नहीं रास्ता कोई !
निर्माता की देख बेबसी—
रचना आंख मूंदकर रोयी
जाने क्या मेरी पीढ़ी का
होगा उपसंहार, दुखी हूं
भाषा पड़ी बंद पुस्तक-सी

आलोचक व्याकरण पढ़ रहे !
रोता है संन्यास अकेला—
सारी दुनिया मुस्काती है !
प्रतिभा पद को प्रणाम करने
उठकर सुबह-सुबह जाती है
आने वाले युग को बोलो
कलाकार क्या उत्तर दोगे !
मिट्टी नोच राम के तन से
तुम रावण की मूर्ति गढ़ रहे !

जब वे नयन याद आते हैं

बिकते समय जिन्हें रोने तक को आज़ादी नहीं मिली थी
अपना दर्द भूल जाता हूं
जब वे नयन याद आते हैं ।

मैंने दर्द सहा जीवन भर
दुःख की हर करवट देखा है
सुख के नाम समय के माथे—
पर केवल सिलवट देखी है !

पर जो सात बार वेदी पर घूमे केवल लाचारी में
अपना दुःख छोटा लगता है—
जब वे नयन याद आते हैं !

इस हद तक अपमान सहा है—
बदले की इच्छा जागी है
अथवा रो-रोकर मरघट से—
अपने लिए शरण मांगी है !

पर जो पत्थर के पांवों पर केवल पड़े-पड़े मुरझाए
सब अपमान भूल जाता हूं—
जब वे सुमन याद आते हैं !

मैंने ज्योति जलाई लेकिन—
बदले में जो पाया तन है
मेरे तप की तुलना में यह—
पीड़ा भी तो बेहद कम है!

पर जो सदा उपेक्षित बनकर बन्द रहे तम की मुट्ठी में
अपना ग़म हल्का लगता है—
जब वे नयन याद आते हैं!

सभाएं बंद कर

जुलूसों और नारों से
प्रदर्शन या प्रचारों से
न कोई देश जीता है,
सभाएं बंद कर, चल खेत में या कारखानों में।

सिपाही के लिए कपड़े, जवानों के लिए रोटी
सभाए बुन नहीं सकतीं उगा सकते नहीं नारे,
पड़ा है देश पर संकट, लगी है जान की बाज़ी,
यही तो वक़्त है कुछ काम कर, कुछ काम कर प्यारे,

विवादों को उठाने से
गड़े मुर्दे जिलाने से
न कोई देश जीता है,
सभाएं बंद कर, चल खेत में या कारखानों में।

गरजता है अगर अम्बर लरजती है अगर धरती
मगर खाली नहीं बैठो इसी में देश की जय है
हजारों बिजलियाँ टूटें, हजारों आंधियाँ आयें
कुदाली को रहो थामे तुम्हारा ही हिमालय है
निरी बातें बनाने से
महज़ बैठक जमाने से
न कोई देश जीता है,
सभाएं बंद कर, चल खेत में या कारखानों में।

गीत नहीं, मैं आग लिखूंगा

अब कुछ दिन को सुनो साथियो!
गीत नहीं, मैं आग लिखूंगा।
गाते-गाते दर्द रात भर
जागा और जगाया तुमको
घायल सपनों के सिरहाने
रोया और रुलाया तुमको
वर्षा-गीत बन्द करता हूं
कुछ दिन दीपक राग लिखूंगा।

थोड़ा भ्रम घट गया, बढ़ गया—
निर्धन की आँखों का पानी
सारे पात्र पतित हैं जिसके—
कुछ ऐसी लिख गई कहानी
कुछ दिन विप्लव के गाने को—
दहके-दहके राग लिखूंगा।

फिर विद्रोह, बग़ावत फिर से
हिंसा को फिर पुकारता हूं
कोमल गीतों के गायक का
ताज स्वयं मैं, उतारता हूं
अब रावण का मरण लिखूंगा
सीता का सोहाग लिखूंगा।

जितना यश मिल गया उसे भी—
ले लो जाकर कहीं बाँट दो!
आलोचक, अपने निबन्ध से—
बिलकुल मेरा नाम काट दो!
जिनके मन है छलनी-छलनी—
कुछ दिन उनके दाग़ लिखूंगा।
अब कुछ दिन को सुनो साथियो
गीत नहीं मैं आग लिखूंगा।

यह तुम मुझे कहाँ ले आए ?

चारों तरफ सावधानी है
कुछ के अधरों पर मुस्कानें
कुछ की आँखों में पानी है
यह तुम मुझे कहाँ ले आए ?

बाहर की बेख़ुदी कहाँ है
भीतर की रोशनी कहाँ है
मोहन की बाँसुरी कहाँ है
राधा की करधनी कहाँ है
चारों तरफ सावधानी है
कुछ के बाँसू हीरे-मोती
कुछ के आँसू बेमानी हैं
यह तुम मुझे कहाँ ले आए ?

पूरी तरह डूब जाने दो
डूबूंगा मोती लाऊँगा
जब तक होश रहेगा मुझको
असली गीत नहीं गाऊंगा

चारों तरफ सावधानी है
कुछ की शत्रु रुकावट है तो
कुछ की दुश्मन आसानी है
यह तुम मुझे कहाँ ले आए ?

दुविधा और द्वैत से मुझको
दूर ले चलो, कहीं ले चलो
जीवन में यह अगर न संभव
मौत जहाँ है वहीं ले चलो
चारों ओर सावधानी है
कुछ का मन है बहुत कृपण तो
कुछ का तन ज्यादा दानी है
यह तुम मुझे कहाँ ले आए ?

मन का संविधान

मन के संविधान में होगा, तन के बहुमत से परिवर्तन,
तो सुन लो पागल विधायकों, सारे नियम तोड़ दूंगा मैं!

इन मिट्टी के पक्षधरों को—
मैं यह बतलाए देता हूं
स्वर है विहग धूल पिंजरा है
फिर से समझाए देता हूं !

पथ का अध्यादेश चलेगा अब पाँवों के लोकतन्त्र में,
इन बूढ़ी बेजान लकीरों का यह वहम तोड़ दूँगा मैं !

चाँदी का मन है, हो जाए
सपनों का ईमान पराजित
पर लालच की राजनीति से—
होती नहीं साधना शासित !

सुख ने शील-भंग कर डाला जिस दिन लजवन्ती पीड़ा का,
धीरज का सत डिग जाएगा, अपना कसम तोड़ दूँगा मैं !

भावुकता के लड़कपने से—
कच्ची नींद सवेरा जागा
सूरज के स्वागत में हमने
तम से लड़ने का व्रत त्यागा

यदि जीवन की गतिविधियों से शंकित होंगी परम्पराएं
तब अतीत का मोह त्यागकर उनका अहं तोड़ दूंगा मैं !

कोई कैसे रहे खुशी से
सन्देहों के अनुशासन में
सब जड़ गईं रूप की मणियाँ
पापी भय के सिंहासन में।

डाली अगर असत के उर में मेरी रचना की वरमाला;
खाता हूं सौगन्ध अश्रु की अपनी कलम तोड़ दूंगा मैं !

परिशिष्ट-1

जीवन-घटनाओं का क्रम

1925 (8 जुलाई)	—जन्म, कुकरावली (मुरादाबाद), उत्तर प्रदेश में।
1935	—अक्षरारम्भ, दस वर्ष की आयु में।
1941	—16 वर्ष की आयु में विवाह।
1944	—सम्भल (मुरादाबाद) के किंग जार्ज यूनियन हाई स्कूल से मैट्रिक।
1948	—चन्दौसी के श्यामसुन्दर मैमोरियल कालेज से बी० ए०। इसी समय पत्नी नाता तोड़कर अपने मैके चली गई।
1948 (जुलाई)	—बे-सरो-सामान दिल्ली-आगमन। कुछ दिन दिल्ली-जंक्शन के मुसाफ़िर खाने में ही विश्राम। हिन्दू कालिज में एम० ए० (हिन्दी) कक्षा में प्रवेश।
1950	—दिल्ली-विश्वविद्यालय से एम० ए० करने के उपरान्त स्थानीय 'रामरूप विद्या मंदिर' में अध्यापन आरम्भ। किन्तु थोड़े ही दिन बाद वहाँ से त्याग-पत्र दे दिया।

1953	—पहली रचना 'नया खून' का प्रकाशन।
1953	—'राजधानी के कवि' का सम्पादन।
1954	—'समाधान' उपन्यास का प्रकाशन।
1955	—'समाज' का सम्पादन।
1956	—'समाज कल्याण' में कार्य।
1957	—'चरित्रहीन के पत्र' का प्रकाशन।
1959	—'आठवाँ स्वर' का प्रकाशन, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत
1960 (26 जनवरी)	—सुश्री सुयस एम० ए०, बी० टी० से दूसरा विवाह नागपुर में
	'मैं दिल्ली हूँ' का प्रकाशन, भारत सरकार के शिक्षा सचिवालय द्वारा पुरस्कृत। सम्प्रति 'नवभारत टाइम्स' में कार्यरत।

परिशिष्ट-2

रचनाओं की तालिका

कविता-संग्रह

1. नया ख़ून (1953)	पुष्प प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली।
2. आठवाँ स्वर (1958)	फ्रैंक ब्रदर्स, चादनी चौक, दिल्ली।
3. मैं दिल्ली हूँ (1959)	बंसल एंड कम्पनी, दिल्ली।
4. सपने महक उठे	(नवीन पुरस्कार प्राप्त)
5. गुलाब और बबूल वन	
6. गाता हुआ दर्द	

सम्पादित

1. राजधानी के कवि (1952) निर्माण प्रकाशन, दिल्ली।
2. प्रगीत (1959) किताब महल, फैज़ बाज़ार, दिल्ली।

उपन्यास

1. समाधान (1954) आत्माराम एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली।

पत्र

1. चरित्रहीन के पत्र (1957) आर्गस पब्लिशिंग कम्पनी, मथुरा रोड, नई दिल्ली।

मुद्रक : हरिकृष्ण प्रिन्टर्स, शाहदरा, दिल्ली-32 4872